चंद्रगुप्त : एक अध्ययन

लेखक

प्रेमनारायण टंडन, एम. ए., सा. र.
[रिसर्चस्कालर लखनऊ विश्वविद्यालय]

प्रथम संस्करण] फरवरी, १९४६ [सवा रुपया

प्रकाशक

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ.

हमारा आलोचना - साहित्य

१.	चंद्रगुप्त : एक अध्ययन	१।)
२.	स्कंदगुप्त : एक अध्ययन	१।)
३.	अजातशत्रु : एक अध्ययन	१।
४	गबन : एक अध्ययन	१।)
५.	गोदान : एक अध्ययन	१।)
६.	निर्मला : एक अध्ययन	।।=)
७.	कामायनी - मीमांसा	१)
८.	'प्रसाद' जी के तीन नाटक	१)
६.	सूर : जीवनी और ग्रंथ	।।।)
१०.	गोपी-विरह और भँवर गीत	१।।।)

मुद्रक

बी० आर० भाटिया

मैक्सवैल प्रेस, लाटूश रोड, लखनऊ

'चंद्रगुप्त' स्व० बाबू जयशंकर प्रसाद की अत्यंत लोकप्रिय ऐतिहासिक रचना है। प्रस्तुत पुस्तक में इसी नाटक का आलोचनात्मक अध्ययन है। प्रसाद-साहित्य के प्रेमियों को, मुझे विश्वास है, यह प्रयत्न सर्वथा रोचक जान पड़ेगा।

'स्कंदगुप्त' और 'अजातशत्रु' की ऐसी आलोचना हिंदी के पाठकों को उपयोगी जान पड़ी थी। इसी प्रोत्साहन का फल यह 'अध्ययन' समझना चाहिए।

'चंद्रगुप्त' के दृश्यों का साहित्यक अध्ययन अपेक्षाकृत विस्तार से लिखा गया है। नाटक की आलोचना का यह रूप, मैं समझता हूँ, पाठकों और आलोचकों, दोनों को प्रिय लगेगा।

रानीकटरा, लखनऊ
१५ फरवरी '४६

प्रेमनारायण टंडन

विषय-सूची

दृश्यों का साहित्यिक अध्ययन

चरित्र-चित्रण

(क) प्रमुख पात्र-पात्रियाँ

(ख) साधारण पात्र-पात्रियाँ

कला की कसौटी पर

चंद्रगुप्त : एक अध्ययन

दृश्यों का साहित्यिक अध्ययन

प्रथम अंक

पहला दृश्य—कथा-विकास, चरित्र-चित्रण और देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति से परिचित कराने वाला नाटक का यह प्रथम दृश्य कला की दृष्टि से सफल है। प्रथम परिचय में ही नाटक के पाँच प्रमुख पात्रों के चरित्रों की मुख्य विशेषताएँ संकेतरूप में हमें ज्ञात हो जाती हैं। चाणक्य का ब्राह्मणत्व पर गर्व और राजनीतिक दूरदर्शिता, सिंहरण का साहस और देश-प्रेम, आम्भीक का देश-द्रोह और उद्दंड व्यवहार, चंद्रगुप्त का गौरवादर्श और आत्मविश्वास तथा अलका की निष्कपटता और राष्ट्रीय-भावना आदि का परिचय हमें उनके विचारों से मिल जाता है।

'शीघ्र भयानक विस्फोट होगा, आर्य जाति पतन के कगारे पर खड़ी एक धक्के की राह देखी है, आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे। किंतु यदि किसी प्रकार सिंधु की प्रखर धारा को यवन सेना न पार कर सकती······।' इत्यादि वाक्यों से देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति और भारतीय नरेशों की पारस्परिक फूट का पता चलता है और इन कथनों की सत्यता जानने के लिए हमारी उत्सुकता बढ़ती है। 'आर्य हम मागध हैं और यह (सिंहरण) मालव। अच्छा होता

कि यही गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा भी देते—' चद्रगुप्त का यह कथन, और 'मेरा देश मालव नही, गाधार भी है, यही क्या समग्र आर्यावर्त है। गांधार आर्यावर्त से भिन्न नही, इसीलिए उसके पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।' सिंहरण के ये वाक्य सुनकर गाधारकुमारी अलका का आश्चर्य प्रकट करके पूछना। क्या कहते हो!' इस बात का द्योतक है कि उस समय राष्ट्रीयता की भावना का क्षेत्र सकुचित हो गया था और समस्त भारतवर्ष की भौगोलिक एकता के रहते हुए भी सारे राष्ट्र को लोग अपना देश नहीं समझते थे।

अभिनय की दृष्टि से इस दृश्य की ओजभरी सक्रियता अभिनंदनीय है। चाणक्य और सिंहरण का वार्तालाप आरभ होते ही आभीक का गरजते हुए आ जाना, चद्रगुप्त-आभीक का असि-युद्ध, चाणक्य के सामने चद्रगुप्त की देश-भक्तों-सी प्रतिज्ञा, सिंहरण और अलका के उत्साहवर्द्धक वाक्य दर्शको के हृदयो में वीरोचित भावना का सचार करते हैं।

साहसी और निर्भीक सिंहरण वीरोचित ढग से 'चचला रणलक्ष्मी' के शुभागमन से प्रसन्न हो कह उठता है—तब आओ, देवि! स्वागत!! उसी समय गाधार-कुमारी अलका का देवि के समान प्रवेश करना बडा चमत्कारपूर्ण है! (बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' के प्रथम सर्ग में उपावाला के सौदर्य का वर्णन करते-करते उर्मिला का प्रथम दर्शन भी ऐसे ही कराया है।)

दृश्य के अत में अलका और सिंहरण का एक दूसरे की ओर देखते हुए प्रस्थान करना युवावस्था के उमड़ते हुए हृदयो के परस्पर अनुरक्त हो जाने का काव्योचित सकेत है।

विशेष—यूनानी लेखकों ने अपने इतिहासों में 'आभीक' का नाम 'एफिस' दिया है। इसका भारतीय रूप 'अभि' या 'आभी' होना

चाहिए और आधुनिक इतिहासकारों ने दूसरे रूप का प्रयोग ही प्रायः किया भी है।

दूसरा दृश्य—तीन उद्देश्य इस दृश्य के हैं। एक, मगध के विलासी शासक नंद की वसंतोत्सव पर विलास-लीला, प्रत्येक कुंज में मदिरा, कलश और चषक के साथ विलासिता का नृत्य, दिखा कर यह संकेत करना कि नंद किस प्रकार आमोद-प्रमोद में मग्न रहता था। दूसरा उद्देश्य है कलाकुशल विद्वान राक्षस की कुलीनता का परिचय देकर उसको अमात्य निर्वाचित करवा देना। तीसरी बात यह कि जिस देश का शासक 'ब्रह्मास्त्र से अधिक सुंदरियों के कुटिल कटाक्षों से डरता हो, गर्व से इस बात की घोषणा करे और विलासी युवक-युवतियों के बीच में स्वीकारे—मेरी मगध की नागरिकाओं का शासन मेरे ऊपर है, उस देश का पतन दूर नहीं है।

कथा-संगठन की दृष्टि से इस दृश्य के सम्बन्ध में कहा जा सकता है इसे स्वतंत्र रूप न देकर नाटककार किसी अन्य से सम्बन्धित करके भी अपना काम चला सकता था।

विशेष—'रत्नावली' नाटिका में वासंती वेष में शोभित महाराज नंद महोत्सव का आनंद छत पर बैठ कर लूटते हैं और इस प्रकार गौरवपूर्ण सम्मान की मर्यादा का पालन करते रहकर भी प्रजा के वसंतोत्सव में सम्मिलित हो लेते हैं। परंतु प्रस्तुत नाटक में मगध के विलासी युवक-युवतियों के साथ 'विलासगौरव को कितना कम करने वाला है! इस चित्रण से प्रसाद जी का संकेत है कि मगध के निवासी नंद के शासन काल में बहुत सुखी, मस्त और नित्य-प्रति आनंद मनाने वाले थे; उनके शासक भी इस आमोद-प्रमोद में सम्मिलित होते थे। परंतु इस दृश्य में युवक-युवतियों का चित्रण इससे कहीं अधिक इस बात की ओर संकेत करता जान पड़ता है कि मगध का यह शासक मूर्ख, विलासी और आत्मसम्मानहीन एक साधारण

व्यक्ति है, तभी तो नागरिक उसकी हँसी उडाने में भी सकोच नहीं करते ।

तीसरा दृश्य—नद के अत्याचार औरब्राह्मण-विरोध के परिचायक दृश्य में चाणक्य के हृदय की कोमलता पर होने वाले प्रथम आघात की कहानी है । आवेश में आकर मगध को उलटने के लिए चाणक्य का तैयार हो जाना, फिर कुछ क्षण बाद उदासीन जीवन बिताने का निश्चय मरना, इन बातों से उसके मानसिक द्वद्व का पता चलता है और हम उसके चरित्र की जटिलता का परिचय भी पाते हैं । अपनी झोपड़ी के 'शैशव की स्निग्ध स्मृति'-स्वरूप को देख कर बालकाल की धवल मधुर हँसी का स्मरण हो आना चाणक्य की हार्दिक कोमल भावुकता की ओर एक सकेत है । सकटार की कन्या सुवासिनी के प्रति उसकी जिज्ञासा से किशोरावस्था मे उसकी ओर चाणक्य के आकर्षित होने का पता लगता है । पिता के अपमान का बदला चाणक्य किस प्रकार लेगा, यह जानने को हम उत्सुक है । विलासी मगध के कुछ घर ऐसे थे जिन्हें 'पशु की खोह' कहने में भी चाणक्य सकुचाता है , इससे स्पष्ट है कि बौद्ध धर्मानुयायी नद के शासनकाल में ब्राह्मणों की दशा दीन हो चली थी ।

चौथा दृश्य—कथा की प्रगति में सहायक प्रथम अक का द्वितीय महत्वपूर्ण दृश्य जिसमें उत्तरापथ के अनेक गणतंत्रों की मागधीय स्थिति से तुलना की गई है कि उन गणतत्रों में सब प्रजा स्वच्छद फल-फूल रही है, पर 'उन्मत्त मगध साम्राज्य की कल्पना में निमग्न है ।' और मगध का शासक 'शस्त्रबल और कूटनीति द्वारा सदाचारों के सिरों पर ताण्डव नृत्य कर रहा है । वह सिद्धान्तविहीन नृशस, कभी बौद्धों का पक्षपाती और कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेद-नीति चला कर बल सचय करता रहता है । मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचाई जा रही है ।' विलास और कूटनीतिज्ञ नंद के व्यवहार

से सारी प्रजा, यहाँ तक कि कन्या कल्याणी और उसकी सखियाँ भी; जिनके प्रति नंद का कन्या-सा स्नेह है, संतुष्ट नहीं हैं और सहज प्रीति न करके भयभीत-सी रहती हैं।

सखी नीला के मुख से 'आज तक्षशिला से लौटे हुए स्नातक सरस्वती-दर्शन के लिए आए हैं, मागध कुमारी कल्याणी का यह प्रश्न—क्या 'सब' लौट आए हैं ?—किसी स्नातक-विशेष के प्रति उसके आकर्षण की ओर संकेत करता है। चंद्रगुप्त से यह सुनकर, 'मै अपने कई बाल-सहचरों को भी न पहचान सका'—'कल्याणी का पूछ बैठना—'परन्तु मुझे आशा थी कि तुम मुझे न भूल जाओगे'—हमारी उस शङ्का का समाधान कर देता है।

राक्षस और सुवासिनी के पारस्परिक आकर्षक की ओर लेखक ने दृश्य के आरंभ मे जो संकेत किया है उससे हमारी उत्सुकता बढ़ती है। 'कुसुमपुर का स्वर्गीय सुमन' सुवासिनी मगध-सम्राट 'नंद की विलास-लीला का उपकरण' हैं, यह जानते हुए भी, राजकोप की परवाह न करके राक्षस का उसे अपनाने का निश्चय कर लेना पाठक की उत्सुकता बढ़ाता है। चाणक्य पर इस सूचना से क्या प्रभाव पड़ेगा, यह जानने को भी हम उत्सुक हैं।

आरंभ इस दृश्य का कुछ ऐसे ढंग से हुआ है कि 'मैं नंद की विलास-लीला का क्षुद्र उपकरण बनकर नहीं रहना चाहती' और 'दुराचारी सदाचार के द्वारा शुद्ध हो सकता है'—सुवासिनी के ये दोनों कथन महत्वपूर्ण होते हुए भी हमे चमत्कृत नही कर पाते। राक्षस का निश्चय भी इसी प्रकार दर्शकों को गंभीर नहीं होने देता।

पाँचवाँ दृश्य—नाटकीय क्रियाशीलता की दृष्टि से सफल दृश्य, आदि से अंत तक दर्शक जिसे साँस रोक कर देखता है। मगध-शासक नंद, बौद्ध-अमात्य राक्षस, ब्राह्मण चाणक्य, सेनापति-पुत्र चन्द्रगुप्त और नंदकुमारी कल्याणी के कथन उनके चरित्रो पर प्रकाश डालते हैं।

चाणक्य के प्रति नंद का व्यवहार पाठकों की उत्सुकता बढ़ाता है। कथा-संगठन के प्रश्न को लेकर कहा जा सकता है कि पौरव पर्व्वतेश्वर का अपमानजनक उत्तर पाने पर कोई भी आत्माभिमानी शासक उसको सहायता देने की बात सुन कर नद की तरह ही क्रुद्ध होता। अतः चाणक्य के प्रति मगध-सम्राट का व्यवहार अनुचित नहीं जान पडता और इसीलिए जोर-जोर से 'ब्राह्मण-ब्राह्मण' चिल्लाकर स्नातक चाणक्य के लिए दर्शकों की सहानुभूति जाग्रत करने का प्रयत्न बहुत सफल और सगत नहीं है।

कल्याणी का चरित्र तो यहाँ विचित्र लगता है जो सारे दरबार में अपने अपमान को स्वीकारती है और फिर सम्राट और अमात्य के हँसी उडाने पर सहसा शात हो जाती है। पिता को चद्रगुप्त की बात मानते न देख कर एक बार वह उसकी सिफारिश करती है; पर वह फिर डॉट दी जाती है और तब इस तरह चुप हो जाती है जैसे डॉट दिए जाने के लिए ही बोली थी।

नाटक के प्रथम दृश्य से इसका सबध लेखक ने देश की राजनीतिक स्थिति बताकर मिला दिया है—'यवनों की विकट वाहिनी निषध पर्वत माला तक पहुँच गई है। तक्षशिलाधीश की भी उसमें अभिसधि है। उत्तरापथ मे बहुत से छोटे छोटे गणतत्र हैं; वे उस सम्मिलित पारसीक यवन बल को रोकने में असमर्थ होंगे, पर्व्वतेश्वर और मगध सम्राट के विरोध का' लेखक ने प्रबल कारण स्थिर कर दिया है। इससे इतिहास के इस तथ्य की रक्षा हो जाती है कि सिकदर का सामना अकेले पर्व्वतेश्वर को करना पडा—मगध में उसे कोई सहायता न मिली—और दूसरे, विदेशियों का विरोध करने के इस सत्प्रयत्न से मगध के तटस्थ रहने का यथोचित-सा कारण भी मालूम हो जाता है!

<u>छठा दृश्य</u>—यवनों के साथ गाधार-नरेश की जिस अभिसधि के

संबंध में नाटककार ने प्रथम दृश्य में संकेत किया है, उसका पूरा परिचय हमें यहाँ मिलता है। पौरव पर्व्वतेश्वर से गांधारपति का बद्ध-मूल वैर है। इसलिए विदेशियों के हाथ में पूर्णरूप से आत्मसमर्पण कर वे देशद्रोही बनना स्वीकारते हैं। यवन-आक्रमण के समय ओहिंद नामक स्थान पर पुल बनाए जाने की चर्चा प्राचीन इतिहासों में मिलती है। इस दृश्य का आरभ उसी प्रसंग से किया जाता देख पाठक नाटककार की सूक्ष्म ग्राह्य बुद्धि से प्रभावित होते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस दृश्य का कोई महत्व नहीं है।

'जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है। फिर जब आपसी सुकुमा-रियाँ इसकी सेवा में कटिबद्ध हैं, तब मै पीछे कब कब रहूँगा'— सिंहरण का यह कथन उसके चरित्र को गिरानेवाला ही है। सिकदर के सेना-पति सिल्यूकस का चित्रण भी यहाँ खटकता है। 'मानचित्र मुझे दो या प्राण देना होगा—' कहकर सिंहरण से कुछ लिए-दिए बिना ही वह भाग निकलता है। सैनिकों के साथ लौटने पर उसका पुनः कथन 'निकल गया मेरा अहेर' थोथा और हास्यास्पद है। यवन सेनापति के सामने ही सिंहरण अलका को दो बार 'राजकुमारी' कहकर संबोधित करता है, तिस पर भी उसे बदी बनाने के लिए सैनिकों से उसका विवाद करना क्या इस बात का सकेत नहीं है कि कायर होने के साथ ही सिल्यूकस मूर्ख भी है!

सातवाँ दृश्य—बदीगृह में चाणक्य। राष्ट्र के कल्याण और आर्या-वर्त की गौरव-रक्षा के लिए चिंतित तथा ब्राह्मणत्व पर गर्व करने वाला यह व्यक्ति आवेशभरी स्पष्टवादिता के लिए बन्दी कर लिया जाता है। पिंजड़े में बन्द सिंह और घायल सर्प की तरह अपनी विवशता के लिए गरजता और फुसकारता चाणक्य हमारे सामने है। उसके चरित्र की विशेषताओं से परिचित कराना ही इस दृश्य का उद्देश्य है। 'मैं आज से प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूँगा और अधिकार

तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा'—चाणक्य का यह कथन दर्शकों की उत्सुकता बढ़ाता है।

आत्माभिमानी वह इतना है कि राक्षस के प्रस्ताव को तिरस्कार-सहित ठुकरा देता है, उसके हाथ से मुक्ति पाना भी वह अपमानजनक समझता है। दूरदर्शी वह ऐसा है कि राक्षस के मुख से 'गुप्त प्रणिधि बनकर' तक्षशिला भेजे जाने की बात सुनते ही समझ जाता है कि पर्वतेश्वर का नाश करने के लिए ही यह आयोजन है। समय की आवश्यकता समझकर आदर्श राष्ट्रप्रेमी की भाँति ही वररुचि को वह सावधान करता है—'केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थ-शास्त्र और दडनीति की अब आवश्यकता है।' इसकी साहसपूर्ण हठवादिता दर्शक को विशेष प्रभावित करती है। बदीगृह में राक्षस के मुँह पर ही वररुचि से उसका यह कहना—'मै कुत्ते को कुत्ता ही बनाना चाहता हूँ। नीचो के हाथ में इद्र का अधिकार चले जाने से जो सुख होता है उसे मै भोग रहा हूँ,—मगध के बौद्ध अमात्य के प्रति घृणा के साथ उसकी निर्भीकता का परिचय भी देता है।

<u>आठवाँ दृश्य</u>—कला की दृष्टि से सुन्दर और सफल दृश्य। वृद्ध गाधारनरेश, राजकुमार आभीक और कुमारी अलका, तीनो के चरित्रों की रेखाएँ यहाँ बड़े चटक रगों से चित्रित हैं। तृष्णा की अग्नि में पतग की तरह जलता हुआ गाधारनरेश कभी पुत्र-स्नेह के आवेश में, महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए देश-द्रोह के कुटिल पथ पर चलने वाले आभीक को ढील देने की बात सोचता है और कभी अनुभवी और दूरदर्शी शासक की तरह गाधार को कष्ट-कलक से बचाने के लिए चिंतित हो जाता है। यह मानसिक द्वद्व उस समय और भी बढ जाता है जब पुत्री अलका को पुत्र आभीक के आचरण के विपरीत, राष्ट्रीयता की ओर बढते वह देखता है।

राष्ट्रीयता की सात्विक भावना से ओत-प्रोत अलका के ओजस्वी

विचार इस आर्य-ललना का चरित्र दर्शको की दृष्टि में बहुत ऊपर उठा देते हैं। आंभीक के हृदय में देशद्रोह की क्षुद्र भावना सीमा पर तब पहुँचती है जब वह रक्त-सबध की मोह-ममता को ठुकराकर कहता है—और तब अलका, मै अपने हाथों से तुम्हारी हत्या करूँगा।

ओज, व्यग्य, आवेश, क्रोध, पश्चाताप, विरोध, विवशता आदि बातों के कारण आदि से अंत तक इस दृश्य की क्रियाशीलता बनी रहती है। अन्यमनस्क भाव से कुछ सोचते हुए पिता से गाधार में विद्रोह मचाने की आज्ञा लेकर अलका का चला जाना तथा कुछ देर पश्चात पुत्र आभीक और गाधार का राज्य, दोनों को त्यागकर महाराज का उसे खोजने चल देना, पाठकों की उत्सुकता बढाता है। देशद्रोही भाई आभीक के सामने ही अलका के कहे हुए ये वाक्य—'जिस उन्नति की आशा से आभीक ने यह नीच कर्म किया है उसका पहला फल यह है कि आज मै बदिनी हूँ, सभव है, कल आप होंगे और परसों गाधार की जनता बेगार करेगी। उसका मुखिया होगा आपका वश-उज्ज्वलकारी आभीक।.........आर्यावर्त के सब बच्चे आभीक-जैसे नहीं होंगे; वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल तिल कट जायँगे। .... अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जो लड़कर मर नहीं गया, वह कायर नहीं तो क्या है।'—उस के असीम साहसयुक्त देश-प्रेम के परिचायक हैं।

नवाँ दृश्य—शौर्यगर्व मे चूर पर्व्वतेश्वर और पददलित ब्राह्मणत्व के अपमान से खीझे हुए चाणक्य के ओजपूर्ण वार्तालाप के अतिरिक्त इस दृश्य का ऐतिहासिक महत्व है 'पिप्पलीकानन के मौर्यों को सच्चे क्षत्रिय' सिद्ध करना। चाणक्य का तर्क है—'आर्य क्रियाओं का लोप हो जाने से इन लोगों को वृषलत्व मिला, वस्तुतः ये क्षत्रिय हैं।' इतिहासकारों के इस विवादग्रस्त विषय के सम्बन्ध में इस प्रकार अपना मत प्रकट करने का अवसर प्रसादजी ने निकाल लिया है।

क्रियाशीलता की दृष्टि से यह दृश्य सफल है। भविष्य के सबंध में चाणक्य ने पर्व्वतेश्वर को सावधान करने के लिए कहा है—'स्मरण रखना, आसन्न यवन युद्ध मे, शौर्य-गर्व से तुम पराभूत होगे। यवनों के द्वारा समग्र आर्यावर्त पादाक्रात होगा। उस समय तुम मुझे याद करोगे।' इसी प्रकार चद्रगुप्त के सबध में चाणक्य की भविष्य-वाणी है—'जिसके लिए कहा गया है कि क्षत्रिय के शस्त्र धारण करने पर आर्त्त वाणी नहीं सुनाई पडनी चाहिए, मौर्य चद्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय प्रमाणित होगा।' ये दोनों कथन हमारी उत्सुकता बढाते हैं।

दसवॉ दृश्य—यवन सेनापति सिल्यूकस को चद्रगुप्त से परिचित कराना और मागध के असीम तेज से प्रभावित करके यवन के मुख से कहला देना कि यह तो कोई बडा श्रीमान पुरुष है, इस दृश्य का उद्देश्य है। परतु इसकी पूर्ति के लिए जो आडम्बर किया गया है वह विशेष आकर्षक और महत्वपूर्ण नहीं है। भोले-भाले बच्चे की तरह सिल्यूकस को चरका देकर, उसे मूर्ख बनाकर अलका को उसके सामने से हटा देने में क्या तत्व है? अचेत पड़े चन्द्रगुप्त के पास एक व्याघ्र को बैठा दिखाना इस साधारण किंवदती का भद्दा पालन भर तो है कि उसके तेज से हिंस्र पशु तक मुग्ध थे। चाणक्य द्वारा चद्रगुप्त के दिए गए परिचय में 'मगध का एक निर्वासित राजकुमार' वाक्याश सुनकर सिल्यूकस का 'कुछ विचारने' लगना इस बात का सकेत है कि वह राजनीतिज्ञ का मस्तिष्क भी रखता है, परन्तु दृश्य के आरंभ में अलका को एकात में पाकर उसका यह कथन, 'यहॉ तो तुम अकेली ही हो सु दरी' उसके छिछोरेपन का परिचायक है जो यवन सेनापति के लिए बड़ी लज्जा की बात है। दृश्य के अत में 'महात्मा दाडयायन' का नाम हमें आगे का हाल जानने को उत्साहित करता है।

कथा-सगठन की दृष्टि से यह दृश्य निरर्थक ही है और इसके हटा देने पर उसमें कोई त्रुटि नहीं आ सकती। सचेत होने पर सिंह को मरा देख

चंद्रगुप्त जब सारी वस्तुस्थिति अपनी तुरत बुद्धि से समझ लेता है और सिल्यूकस से 'आपने प्राणों की रक्षा की', कहकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है, उसके पश्चात भी यवन सेनापति का सारी बात इस प्रकार स्पष्ट करना—'जब तुम अचेत पड़े थे तब यह तुम्हारे पास बैठा था ; मैंने विपद समझ कर इसे मार डाला' व्यर्थ ही तो है।

ग्यारहवाँ दृश्य—अदृष्टदर्शी भारतीय दार्शनिक की निर्भीकता, तत्वदर्शिणी बुद्धि और भविष्यवाणियों से, अपने को जगद्विजेता समझने वाले सिकन्दर को प्रभावित कराना इस दृश्य का प्रथम उद्देश्य है तथा चद्रगुप्त के असीम तेज की ओर उसे आकृष्ट कराना, दूसरा।

(१) प्रत्येक परमाणु न जाने किस आकर्षण से खिंचे चले जा रहे हैं, जैसे काल अनेक रूप में चल रहा है। (२) मुझसे कुछ मत कहो। कहो तो अपने आप ही कहो जिसे आवश्यकता होगी, सुन लेगा। (३) भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीडा-कंदुक नहीं बन सकता। (४) जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता उसे ले लेने की स्पर्द्धा से चढ़कर दूसरा दंभ नहीं। (५) मगलमय विभु अनेक अमंगलों में कौन-कौन कल्याण छिपाए रहता है, हम सब उसे नहीं समझ सकते। (६) कल्याणकृत को पूर्ण विश्वासी होना पड़ेगा। विश्वास सुफल देगा, दुर्गति नहीं। (७) विजय-तृष्णा का अंत पराभव में होता है। आदि-आदि भारतीय दार्शनिक दाण्ड्यायन के तत्वपूर्ण कथन पूर्ण सत्य, और प्रभावशाली हैं। गाधारलक्ष्मी अलका के लिए, 'अच्छा जाओ देवि, तुम्हारी आवश्यकता है', 'ब्राह्मणत्व के गौरव पर गर्व करने वाले चाणक्य के लिए' 'सब विद्याओं के आचार्य होने पर भी तुम्हें उसका फल नहीं मिला, उद्वेग नही मिटा', और चंद्रगुप्त को दिखाकर सिकदर के लिए' 'देखो, यह भारत का भावी सम्राट तुम्हारे सामने

बैठा है', आदि इस दार्शनिक की भविष्यवाणियाँ नाटकीय दृष्टि से बड़ी चमत्कारपूर्ण और प्रभावशालिनी हैं।

तुमसे चद्रगुप्त से कब परिचय हुआ? सिकदर के इस प्रश्न के उत्तर में सिल्यूकस का यह कहना कि उनसे तो मैं पहले ही मिल चुका हूँ, इस बार पुनः उसकी मूर्खता का परिचय देता है।

प्रथम अक के प्रथम दृश्य की भाँति यह अतिम दृश्य भी महत्वपूर्ण, नाटकीय सक्रीयता से युक्त और सफल है। दृश्य के अत में सबका स्तब्ध होकर चन्द्रगुप्त की ओर देखना और चद्रगुप्त का आश्चर्य से कार्नेलिया को देखने लगना भी चमत्कारपूर्ण और सोद्देश्य है।

द्वितीय अंक

पहला दृश्य—प्रथम अक के विभिन्न दृश्यों में जिन विपत्तियों से हम अलग अलग परिचित हो चुके हैं, वे सभी यहाँ एकत्र हैं। विश्व-विजय की कामना रखने वाले सिकदर की इच्छा-पूर्ति के सम्बन्ध में पहली शंका दाड्यायन के आश्रम मे उसकी भविष्यवाणी सुन कर पाठक को होती हैं। उसकी पराजय का द्योतक दूसरा सकेत नाटककार ने यहाँ किया है जब फिलिप्स और सिल्यूकस, इन दोनों सेनापतियों का पारस्परिक वैमनस्य यवन सेना में फैलने वाले भावी आतरिक विरोध का बीज बोता है। चन्द्रगुप्त के मुख-तेज से सिकदर और सिल्यूकस प्रथम अक में चकित हो चुके है। यहाँ उसकी साहसपूर्ण निर्भीकता के साथ शस्त्र-कौशल दिखलाने का उद्देश्य है उसकी भावी विजय के लिए पाठक के हृदय में आशा उत्पन्न करना। यवन शिविर में सम्राट और सेनापति के सामने ही 'मुझे आपसे सहायता नहीं लेनी है।' 'मैं यवनों को अपना शासक बनने को आमन्त्रित करने नहीं आया हूँ।' 'मै मगध का उद्धार करना चाहता हूँ, परन्तु यवन लुटेरों की सहायता से नहीं।' 'मुझे लोभ से पराभूत गाधारराज आम्भिक समझने की भूल नहीं होनी चाहिए—' सिकदर से कही हुई ये बातें और उसी के सामने

आभीक को दी हुई यह फटकार,—'स्वच्छ हृदय भीरु-कायरों की सी वंचक शिष्टता नहीं जानता ; अनार्य, देशद्रोही आभीक, चंद्रगुप्त रोटियों के लालच से, या घृणाजनक लोभ से सिकंदर के पास नहीं आया है,' निसंदेह चंद्रगुप्त की असीम वीरता और निर्भीकता का परिचय देती है। यवन सेनापति सिकंदर का यह कथन, 'भारत आज तक कभी आक्रांत नहीं हुआ,' हमारी प्राचीन स्वतंत्रता की उज्ज्वलता सिद्ध करता है। चंद्रगुप्त के प्रति कार्नेलिया के आकर्षण का भेद यहीं सबको ज्ञात हो जाता है। फिलिप्स द्वारा किए गए अपने अपमान की बात कार्नेलिया इसीलिए भूलना नहीं चाहती कि 'उस घटना से किसी और का सम्बन्ध है।'

दृश्य के आरंभ में पता लगता है कि दारा को पराजित करने के पश्चात् सिकंदर ने उसकी युवती कन्या से जबरदस्ती विवाह कर लिया है। इतिहास में इस बात का उल्लेख है कि दारा की कन्या से सिकंदर का विवाह हुआ था, और इसके लिए उसकी स्वीकृति ले ली गई थी ; उसकी प्रसन्नता से यह सम्बन्ध हुआ था। परन्तु इस दृश्य में तो उसका कार्य एक लुटेरे-सा है जो जीत में मिली हर चीज का इच्छानुसार भोग करने को प्रस्तुत है और उसके इस व्यवहार में 'वह देवकुमारी-सी सुन्दर बालिका सम्राज्ञी कहने पर तिलमिला जाती है।'

ग्रीक-शिविर के पास फिलिप्स के दुर्व्यवहार से कार्नेलिया की रक्षा करने के लिए चंद्रगुप्त को पहुँचाना नाट्य कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर नहीं है। संकट में पड़ी प्रेमिका को बचाने के लिए उसके प्रेमी को अवसर पर पहुँचा देना 'प्रसाद' जी का ऐसा परिचित ढंग है कि उसमें नवीनता का कोई आकर्षण शेष नहीं रहता और इसीसे यह बात कभी कभी बहुत खटकने लगती है।

दृश्य के अंत में चंद्रगुप्त के निकल जाने पर जिस सेनापति को

सिकंदर ने निग्राराधीन कर रखा है उसीने पूछता है—यह क्या ? और चटाक से तमाचे जैसा उत्तर पाता है—आपका अविवेक। क्या ग्रीकों का राजकीय शिष्टाचार ऐसा ही होगा ?

दूसरा दृश्य—यवनों के विरोध का प्रथम उल्लेख्य उद्योग दिखाना इस दृश्य का जितना ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है, उतनी ही असफलता लेखक को इसमें मिली समझना चाहिए। चाणक्य, सिंहरण, कल्याणी, पर्व्वतेश्वर सभी यहाँ विचित्र रूप में हमारे सामने आते हैं और उनके प्रथम वाक्यों से पता लगता है जैसे सभी घबराए हुए और परेशान हैं। अभी जो चाणक्य व्यंग्य कर रहा था वही क्षण भर बाद सिंहरण के न आने का समाचार पाकर पहेली-सी बूझता है—'जब काली घटाओं से आकाश घिरा हो, रह रह कर बिजली चमक जाती हो, पवन स्तब्ध हो, उमस बढ़ रही हो और आषाढ़ के आरंभिक दिन हों, तब किस बात की संभावना करनी चाहिए ?' चाणक्य इसी समय सिंहरण को आते देख कर पूछता है—'तुम आ गए परंतु............।' और सिंहरण जैसे काट खाता है—'किंतु-परंतु नहीं आर्य।' कल्याणी का प्रथम कथन 'सेनापति ! मैंने दुस्साहस करके पिताजी को चिढ़ा तो दिया पर अब कोई मार्ग बताओ जिससे मैं सफलता प्राप्त कर सकूँ' संकेत करता है जैसे वह अपने किए पर पछता रही है। पर्व्वतेश्वर प्रवेश करता है। कल्याणी और मगध-सेनापति को वह अभी तक जानता नहीं, परतु उन्हीं से पूछता है—'यह किस गुल्म का शिविर है ?' कितना हास्यास्पद यह प्रश्न है ! विश्व-विजेता सिकंदर का सामना करने वाला पर्व्वतेश्वर इतना बेखबर कि मगध सेना के आने की सूचना भी उसे नहीं मिली ! सँपेरे के वेश में आकर सिंहरण पर्व्वतेश्वर को सूचना देता है—'रातोरात यवन सेना वितस्ता के पार हो गई है, समीप है, महाराज, सचेत हो जाइए।' तो क्या महाराज सचेत नहीं थे ? क्या यही सूचना देने के लिए चाणक्य

अकर्मण्य रूप में चित्रित हैं जैसे वे खड़े खडे इस भारतीय वीर का पतन भर देखते रहे हों। युद्ध-क्षेत्र में कल्याणी के आने का रहस्य यहाँ खुलता है। पिता से वह यह कह आई है कि जाती हूँ पौरव पर्व्वतेश्वर को यह दिखाने कि राजकुमारी कल्याणी किसी क्षत्रियाणी से कम नहीं, परंतु चद्रगुप्त को एकात में पाकर बतलाती है कि केवल तुम्हें देखने के लिए युद्धक्षेत्र में आई हूँ। मुझे विश्वास था कि तुम युद्ध में अवश्य होगे। मगध-कुमारी के इस कथन से उसके प्रेम का परिचय पाकर व्यस्त चद्रगुप्त जब उसे डॉट देता है—परतु, राजकुमारी, समय नहीं। मेरा हृदय देश की दुर्दशा से व्याकुल है। इस ज्वाला से स्मृति-लता मुरझा गई है, तब कल्याणी को मन मसोस कर रह जाना पड़ता है।

दृश्य के अत में सधि हो जाने के पश्चात आभीक का आकर घायल सिंहरण और उसे उठाती हुई अलका, दोनों को बन्दी कर लेना, पर्व्वतेश्वर का उन्हें अपने यहाँ रखने का प्रस्ताव करना और सिकन्दर का उससे सहमत हो जाना, एक सम्मिलित रहस्य बन कर पाठकों की उत्सुकता बढ़ाता है।

चौथा दृश्य—सुमन-सी कोमल सिंधुकुमारी की भोली भाली सरलता देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है। चद्रगुप्त का भूखा हृदय उसकी ओर आकृष्ट होता है और 'रणभेरी के पहले मधुर मुरली की तान' सुनने की कामना उसमें जाग उठती है। चद्रगुप्त और मालविका को इस तरह उद्यान के एक अश में बातें करते पाकर चाणक्य का यह कहना, 'छोकरियों से बातें करने का यह समय नहीं है', उसकी हृदयहीन अशिष्टता का परिचय देता और उसके गुरुजनत्व की गंभीरता के मर्मस्थल पर आघात करता है, साथ ही चद्रगुप्त और मालविका के लिए अपमानजनक भी है।

चद्रगुप्त ने चारों ओर घूमने-फिरने का जो वर्णन किया है, उससे यवन-सेना की गति-विधि का पता पाठकों को चल जाता है। 'नद के

नाम कई लाख सेना है, यह सुनकर यवनों में आतंक छा गया और एक प्रकार का विद्रोह फैल गया * * * यवन सैनिकों ने विपाशा को पार करना अस्वीकार कर दिया और वे देश लौट चलने के लिए आग्रह करने लगे। सिकंदर के बहुत अनुरोध करने पर भी वे युद्ध के लिए सहमत नहीं हुए।'—आदि सूचनाएँ विश्वविजय का स्वप्न देखने वाले सिकंदर के भारत से लौटने का कारण बतलाती हैं, यद्यपि विदेशी इतिहासकार सम्भवतः इनसे पूर्ण सहमत न होंगे। ऐतिहासिक ग्रंथों में भारत से लौटते समय सिकंदर के एक बार पराजित होने की चर्चा मिलती है। यहाँ चंद्रगुप्त की यह इच्छा कि इस जगद्विजेता का ढोंग करने वाले को एक पाठ पराजय का पढ़ा दिया जाय, इतिहास-सिद्ध सत्य को गौरव प्रदान करती है। मगध की छोटी-सी सेना को 'सिकंदर की यवन-सेना के सामने इतना विराट प्रदर्शन' करने की आज्ञा देना कि वह भयभीत हो, चंद्रगुप्त की कुशलता की ओर एक संकेत है।

<u>पाँचवाँ दृश्य</u>—सिंहरण और पर्वतेश्वर के वीर कार्यों से पाठक पहले परिचित हो चुके हैं, इस दृश्य में उनके हृदय का कोमल पक्ष देखिए। अपने प्रति सिंहरण की प्रीति का परिचय पाने का जो ढंग अलका ने ग्रहण किया है सहृदयों को वह सुन्दर लगेगा। पर्वतेश्वर की प्रतिज्ञा उसके चरित्र पर प्रकाश डालने के साथ-साथ पाठक की उत्सुकता बढ़ाती है।

आम्भीक की भीतरी इच्छा थी कि पर्वतेश्वर की कई रानियों में मैं भी हो जाऊँ—सिंहरण से इतना कहने के बाद अलका का यह वाक्य, 'परन्तु मैंने अस्वीकार कर दिया' निरर्थक है। इसी प्रकार सिंहरण के सन्धान करने पर 'परंतु व्यथा को दबाना पड़ेगा', लिखने के बाद सम्भवतः अपने संकेत को स्पष्ट करने के लिए ही अलका कहती है—'सिंहरण को मालव भेजने के लिए मगध के साथ अत्याचार करना होगा'—और यह वाक्य स्थिति की सारी गंभीरता पर पानी फेर देता है।

बंदी और घायल सिंहरण को पहले तो अलका ने चिढ़ा दिया, फिर कहती है—जाओ सो रहो, मैं आज्ञा देती हूँ—और सिंहरण चला भी जाता है, स्पष्टत यह विचित्र प्रणय-व्यापार है। सिंहरण सोने जाता है तब समय रात का होगा; इस समय पर्वतेश्वर का आना भी खटकता है।

छठा दृश्य—मालवों की युद्ध-परिषद्। चाणक्य के विचारों से सहमत होकर चद्रगुप्त को मालवों और क्षुद्रकों की सम्मिलित सेना का सेनापति नियुक्त किया जाता है। प्रभाव की दृष्टि से चाणक्य की वक्तृता बहुत ओजपूर्ण और सफल नहीं कही जा सकती। चरित्र-चित्रण का इस दृश्य में कोई प्रश्न नहीं उठता और कथा-सगठन की दृष्टि से यह दृश्य व्यर्थ भी है। चौथे दृश्य में चद्रगुप्त ने और पाँचवे में अलका ने जिस प्रकार बीच की घटनाओं का संक्षेप में विवरण दिया है, उसी प्रकार इसका भी उल्लेख किया जा सकता था।

चाणक्य की वक्तृता का ओजपूर्ण भाग सुनने के बाद भी जो नागदत्त विरोध के स्वर में जोर से कहता है—'ऐसा नहीं हो सकता' अर्थात् चद्रगुप्त को सेनापति बनाने को हम तैयार नहीं, वही दो-तीन साधारण वाक्य और सुन कर अपनी भूल स्वीकारता है—'समझ गया, चद्रगुप्त को ही सम्मिलित सेना का सेनापति बनाना श्रेयस्कर होगा।' उसका विरोध और स्वीकृति दोनों ही हास्यास्पद हैं।

सातवाँ दृश्य—साधारण दृश्य जो इस बात की सूचना देता है कि नारी की सहज आकर्षण-शक्ति से अलका परिचित है। ललित स्वर में एक गीत गाकर वह पर्वतेश्वर को उन्मत्त बना कर उसकी विकलता से लाभ उठाती और छुटकारा पाने का उपाय सोच निकालती है।

दृश्य के अन्त में अलका का एक स्वगत-कथन दिया गया है—'मैं चलूँ, निकल भागने का ऐसा अवसर दूसरा न मिलेगा।' इस कथन

की विशेष आवश्यकता न थी ; क्योंकि लेखक यदि अलका की सूझ-बूझ से पाठकों को परिचित कराना ही चाहता है तो दूसरे ही क्षण पर्वतेश्वर के चले जाने के पश्चात् एकात में सारा रहस्य समझा सकता था।

आठवाँ दृश्य—यवनो को भारतीय सीमा के बाहर निकालने के आयोजन का परिचायक दृश्य। 'हम लोगो ने महान् दायित्व उठाया है, इसका निर्वाह करना होगा', 'जीवन-मरण से खेलते हुए करेंगे वीरवर।'—चद्रगुप्त और सिंहरण के ये दोनों वाक्य उनकी देशभक्ति और साहस का परिचय देते हैं। चंद्रगुप्त का यह कथन—'वे हमीं लोगों के युद्ध हैं जिनमें रणभूमि के पास ही कृषक स्वच्छदता से हल चलाता है। यवन आतंक फैलाना जानते हैं और उसे अपनी रणनीति का प्रधान अंग मानते हैं। निरीह साधारण प्रजा को लूटना, गाँवों को जलाना, उनके भीषण परन्तु साधारण कार्य हैं।'—यवन-रणनीति से भारतीय प्रणाली की श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

इस दृश्य में चाणक्य की अनुपस्थिति दिखाने का उद्देश्य संभवतः यह सिद्ध करना है कि चंद्रगुप्त उसके न रहने पर भी युद्ध-कार्य का संचालन सतर्कता से कर सकता है।

दृश्य के अतिम भाग में चन्द्रगुप्त बड़ी गंभीरता से सिंहरण को जो रहस्य 'पर एक बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए', कहकर समझाना चाहता है, वह सिर्फ यह है, 'हमें शत्रु की नीति से युद्ध करना होगा।' शंका यहाँ यह होती है कि शत्रुओं की नीति केवल आतंक फैलाने की है; तब क्या चद्रगुप्त भी आतक फैलाना चाहता है ? अपनी नीति चन्द्रगुप्त ने स्पष्ट की होती तो अच्छा था।

नवाँ दृश्य—कल्याणी के लिए चाणक्य की विचित्रता और राक्षस के लिए विकटता सिद्ध करने वाला दृश्य जिससे हमें चाणक्य के मनोविज्ञान के पारखी होने का पता लगता है। कल्याणी चन्द्रगुप्त से प्रेम

करती है और राक्षस सुवासिनी को चाहता है तथा मगध का शुभ-चिंतक भी है, इन बातों का अध्ययन करके नीतिज्ञ चाणक्य दोनों के दुर्बल अंगों को अपना लक्ष्य बनाता है। कल्याणी जब मगध लौटने का प्रस्ताव करती है तो चाणक्य उत्तर देता है—'परन्तु राजकुमारी (तुम्हारे जाने से) चंद्रगुप्त का असीम प्रेमपूर्ण हृदय भग्न हो जायगा, वह बिना पतवार की नौका-सदृश इधर-उधर बहेगा।' और जब राक्षस मगध की अविपन्नता का प्रश्न उठाता है तो वह उत्तर देता है-'तो यवनों से कह दिया जाय कि हमारी क्षुद्र सेना तुम्हारे लिए मगध तक पहुँचने का सरल पथ छोड़ देने को प्रस्तुत है।' राक्षस सारी स्थिति समझता है और कल्याणी के साथ वहीं रुकने का निश्चय करता है। कुछ देर बाद राजकुमारी के मंच से चले जाने पर चाणक्य एक भेदभरी बात राक्षस से कहता है—नन्द को अपनी प्रेमिका सुवासिनी से तुम्हारे अनुचित संबंध का विश्वास हो गया है। अभी तुम्हारा मगध लौटना ठीक न होगा। इस कूटनीति से राक्षस और मगध की सेना को वहाँ रोक कर यवनों को भ्रम में डाले रहने के प्रयत्न में चाणक्य सफल होता है।

चाणक्य का प्रतिद्वंद्वी राक्षस यहाँ बिलकुल बुद्धिहीन और अदूर-दर्शी-सा चित्रित किया गया है और इससे चाणक्य की नीतिज्ञता पर आघात होता है। राक्षस को चाणक्य हर बार पराजित करता है। यदि राक्षस उसी की तरह चतुर और नीतिज्ञ होता तो चाणक्य की विजय गौरवपूर्ण समझी जाती, परंतु निर्बलों को हराने में कोई प्रशंसा की बात नहीं है।

दसवाँ दृश्य—द्वितीय अंक का अंतिम दृश्य। मालव दुर्ग के भीतरी भाग में सिकन्दर और सिल्यूकस से युद्ध। इतिहासों में लिखा है कि इसी युद्ध में सिकन्दर बुरी तरह घायल हुआ था और अन्त में इसी घाव से मरा भी। 'निरीह जनता का अकारण वध करने वाले नृशंस सिकन्दर को चंगुल में पाकर भी' 'भारत के ऊपर एक ऋण,

पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने' का प्रत्युत्तर देकर सिंहरण ने भारतीय वीरो की विशालहृदयता का परिचय दिया है। इसी प्रकार अपने प्राण बचाने वाले यवन-सेनापति सिल्यूकस को चारों ओर से घेरकर भी बच कर निकल जाने देना कृतज्ञता का बोझ हलका करने का अपूर्व उदाहरण है। इन दोनों दृश्यों का संगठन करने से प्रसाद जी की राष्ट्रीयता के प्रति असीम भक्ति का बहुत सुन्दर परिचय मिलता है।

यवन-सेनापति का चित्रण यहाँ भद्दा हुआ है। सिकन्दर तो घायल था; यवन-सैनिक उसे उठा ले गए। युद्ध-क्षेत्र से इस प्रकार उसका हट जाना ठीक है। परन्तु 'मार्ग चाहते हो या युद्ध ! मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है, तुम्हारा जीवन।'—चन्द्रगुप्त के इस कथन को सुन कर कुछ सोचते हुए सिल्यूकस का यह उत्तर देना—'हम दोनो के लिए प्रस्तुत हैं; किन्तु······।'—उसके चरित्र को बहुत गिरा देता है। चन्द्रगुप्त के प्रश्न की ध्वनि है कि मारते तो हम जरूर, पर खैर, तुमने मेरी जान बचाई थी, इसलिए एक बार तुम्हे छोड़ दूँगा अगर तुम माफी माँग लो। और सिल्यूकस उत्तर देता है—सामना हो गया है, इसलिए लड़ना तो पडेगा ही, किन्तु अगर एक बार प्राण-दान देते तो क्या कहना था ! चन्द्रगुप्त सचमुच उसे माफ कर देता है; पर साथ ही एक आघात और करता है--जाओ, सेनापति, सिकन्दर का जीवन बच जाय तो फिर आक्रमण करना। आशय यह कि तुम्हारे सम्राट् को भी हम पर आक्रमण करने का फल मिल चुका है, उन्हें भी हम क्षमा कर चुके हैं; जाओ।

दृश्य के आरभ में खटकने वाली दो एक बाते हैं। अलका जानती है कि दुर्ग ध्वस करने के लिए यत्र लगाए जा चुके हैं * * * और आज ही युद्ध का अतिम निर्णय है, फिर वह सिंहरण को शीघ्र ही क्यों बुला भेजती है ? उत्तर में केवल यह कहना, कि चन्द्रगुप्त ने सिंहरण को दुर्ग के भीतरी भाग की रक्षा का भार सौंपा था और अलका को

एक शून्य परकोटा दिखाई दिया, पर्याप्त न होगा; क्योंकि इससे सेनापति की असावधानी ही प्रत्यक्ष होती है। सिंधप्रदेश की राजकुमारी से अलका कहती है—जा, परन्तु सिंहरण को शीघ्र ही भेज दे। क्या यह सम्बोधन राजकुमारी मालविका के योग्य है और अनन्य प्रेम का परिचायक मान लिया जाय?

तृतीय अंक

पहला दृश्य—नये अंक का पहला दृश्य नन्द की निन्दा और चाणक्य की प्रशसा से आरम्भ होता है। अमात्य राक्षस ने अनेक बार चाणक्य के कृत्यों पर आश्चर्य प्रकट करके पाठकों की दृष्टि में उसका सम्मान बढा दिया है, परन्तु मगध-शासक नन्द के लिए अमात्य राक्षस ने कुछ विशेषण—यथा, 'मूर्ख मगध नरेश ने संदेह किया है,' 'क्रूरता और मूर्खता की प्रतिमूर्ति नन्द! पशु!' खटकते हैं। सिकन्दर द्वारा अलका की वीरता की प्रशसा के उल्लेख से लेखक का उद्देश्य भारतीय गौरव-वृद्धि करना है। राक्षस को बन्दी करने के लिए सैनिकों का आना, अमात्य से बातचीत और नए सैनिकों का आकर पूर्वागतो को बन्दी कर लेना नाटकीय सक्रियता के लिए अच्छा है, पर चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस दृश्य मे कोई नवीनता नहीं है।

अमात्य राक्षस इस नाटक में आत्मसम्मान भाव से बिलकुल रहित चित्रित किया गया है, जो आता है 'भले ही वह राक्षस क्यों न हो' कह कर उसकी हँसी उडाता है और मजा यह कि राक्षस किसी की अपमानजनक बातों की ओर ध्यान नहीं देता। सबसे अधिक खटकने वाली बात है सिकदर का चित्रण। जिस सिकंदर की 'विश्व-विजय लालसा' पर तुषारपात हो चुका है, जिसकी 'कूटनीति प्रत्यावर्तन में भी विजय चाहती है' और जिसे सिंहरण ने बुरी तरह घायल किया है, वही सारा क्षोभ, सारा क्रोध भुलाकर, आत्मभिमान भुलाकर भारतीयों

के उत्सव में सम्मिलित हो, यह कुछ जॅचा नहीं। यदि 'अलका को तक्षशिला-नरेश आभीक की बहन' समझकर सिकंदर नीति-विशेष से इस युद्ध में सम्मिलित हुआ माना जाय, तो यह उस 'नृशस' की प्रवृत्ति के विपरीत बात होगी जिसने 'निरीह जनता का अकारण वध किया है।'

<u>दूसरा दृश्य</u>—चरित्र-चित्रण और अभिनयात्मक क्रियाशीलता की दृष्टि से प्रथम दृश्य से कहीं अधिक सफल दृश्य। क्षोभ और क्रोध भरे जिस स्वगतकथन से इसका आरम्भ होता है वह अनिश्चित और अविश्वासयुक्त अभिमानी प्रकृति वाले व्यक्ति की विवशता का परिचायक होते हुए भी कुछ विलक्षण लगता है। क्षत्रिय वीर पर्वतेश्वर से चन्द्रगुप्त की प्रशंसा लेखक ने इसका गौरव बढ़ाने के लिए कराई है। चाणक्य के समझाने पर 'जिन यवनों ने लाञ्छित और अपमानित किया है उनसे प्रतिशोध' लेने के लिए पर्वतेश्वर का तैयार हो जाना भविष्य के लिए पाठकों की उत्सुकता बढ़ाता है। कार्नेलिया और चन्द्रगुप्त के वार्तालाप के दो उद्देश्य हैं—एक, इस यवनकुमारी से भारतवर्ष को 'मानवता की जन्मभूमि' कहला कर प्राचीन भारतीय गौरव की अभिलषित वृद्धि करना और दूसरा, चन्द्रगुप्त के हृदय के कोमल पक्ष से पाठकों को अवगत कराना; संकेत करना कि वह इस सिल्यूकस-पुत्री कार्नेलिया की ओर आकृष्ट है। फिलिप्स का सारा व्यवहार हास्यास्पद है। कार्नेलिया की एक बात का उत्तर देता हुआ वह प्रवेश करता है; परन्तु चन्द्रगुप्त को देख भी नहीं पाता। तो क्या वह समझता है कि राजकुमारी दीवालों से बात कर रही है। कुछ देर बाद जैसे होश में आने पर उसे देख कर चौंकता है और तुरन्त कह उठता है—मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध किया चाहता हूँ, परतु चन्द्रगुप्त को प्रस्तुत पाकर न जाने क्यो टाल जाता है—अच्छा, फिर कभी मैं तुम्हें आह्वान करूँगा।

चन्द्रगुप्त से कहा हुआ कार्नेलिया का यह वाक्य 'किन्तु मुझे

विश्वास है कि मैं पुनः लौटकर भारत आऊँगी,' और चाणक्य का राक्षस को मूर्ख बना कर उसकी आंगुलीय मुद्रा ले लेना, दोनों कार्य कथा की भावी गति-विधि के लिए पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं।

खटकने वाली दो-एक बातें इस दृश्य में और हैं। वृद्ध गांधारराज का ठीक उस समय मंच पर प्रवेश करना जब स्वस्तिमती अलका सौभाग्यवती होने जा रही हैं, विचित्र लगता है। दो-एक दिन पहले वह आ जाता और उसके आने पर विवाह का प्रसंग उठाया जाता तो क्या बुराई थी ? चाणक्य और चंद्रगुप्त को मगध की प्रजा समझ कर जो राक्षस सत्य गर्व कर रहा है वही चाणक्य के पूछने पर 'तो तुम स्वीकार करते हो' उत्तर देता है—शत्रु की उचित प्रशंसा करना मनुष्य का धर्म है। तुमने अद्भुत काय किये, इसमें भी कोई संदेह है ?' तो क्या राक्षस चाणक्य को अपना 'शत्रु' समझता है ? तब इस शत्रु पर विश्वास करके क्षण भर बाद ही 'आंगुलीय मुद्रा क्यों सौंप देता है ? और चाणक्य उसके इस कथन पर ध्यान क्यों नहीं देता ? क्या उसे मूर्ख समझ कर ? या आंगुलीय मुद्रा लेने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक गाली सुन लेना बुरा नहीं समझता ?

तीसरा दृश्य—नाटक का सबसे छोटा परन्तु साथ ही भारतीय गौरव की याद दिलाने वाले उद्देश्य से युक्त महत्वपूर्ण दृश्य। सिकंदर द्वारा भारत की प्रशंसा और अभिनन्दन कराना सोद्देश्य है। 'जिस समय तुम भारत के सम्राट् होगे उस समय मैं उपस्थित न रह सकूँगा,' तैंतीस वर्ष की छोटी अवस्था में ही काल-कवलित होने वाले सिकंदर का चन्द्रगुप्त से कहा हुआ यह वाक्य आगे चलकर सार्थक सिद्ध होता है। अत्याचारी नन्द के हाथों से मगध का उद्धार करने में चन्द्रगुप्त की सहायता के लिए पर्वतेश्वर को प्रस्तुत होते देख पाठकों को आशा होती है कि चाणक्य को अपने प्रयत्न में मगध में सफलता ही मिलेगी।

चौथा दृश्य—मगध के अत्याचारी शासन के ध्वंस की प्रस्तावना

का परिचायक साधारण दृश्य। चाणक्य यहाँ गूढनीतिज्ञ के रूप में चित्रित है ; परन्तु उसके गौरव में छोटे के प्रति थोड़ी अवहेलना का भाव भी है। 'पिता के कारागार होने पर भी आप मुझे मगध जाने से रोक रहे हैं ?' चन्द्रगुप्त के इस प्रश्न के उत्तर में चाणक्य का यह कथन,—'यह प्रश्न अभी मत करो,'—एक झिड़की नहीं तो क्या है ? 'मगध जाऊँगा, देखूँ पर्वतेश्वर क्या कहते हैं ?'—भविष्य के सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त की यह शङ्का उसके चरित्र को ऊपर उठाने वाली नहीं है। चन्द्रगुप्त, चाणक्य और पर्वतेश्वर के मञ्च पर आने के पूर्व अलका और सिंहरण का वार्तालाप भी निरर्थक-सा है। 'मैं चाणक्य के हाथ का पुतला बनकर मगध का नाश नहीं करा सकता,'—राक्षस की इस स्वीकारोक्ति की ध्वनि कि वह अब तक जान-बूझ कर कठपुतली बना रहा, हास्यास्पद ही है। 'मालव कृतघ्न नहीं होते,'—बार-बार सिंहरण का यह कथन भी उसके चरित्र की गंभीरता घटाता ही है। 'द्वन्द्व के लिये फिलिप्स का निमन्त्रण' और मगध-शासन-परिवर्तन की योजना दोनों बातें यहाँ पाठकों की उत्सुकता बढाने वाली हैं।

पाँचवाँ दृश्य—नन्द की मानसिक हलचल के साथ चरित्र की हीनता का परिचय इस दृश्य में मिलता है। आरम्भ और विकास इस दृश्य का बड़ी सफलता से हुआ है, परन्तु अन्त में राक्षस के पहुँचते ही अभिनय का सारा आकर्षण जाता रहता है। मगध-सम्राट् नन्द की रंगशाला में अमात्य राक्षस का इस प्रकार बेरोक-टोक चले आना है भी तो खटकने वाली बात। 'अच्छा तो इस समय जाता हूँ'—मगध-सम्राट् से कहा हुआ यह वाक्य भी सुन्दर नहीं बना।

छठा दृश्य—मगध-शासन-परिवर्तन का परोक्ष प्रयत्न। कुसुमपुर के 'नागरिक नन्द की उच्छृङ्खलता से बहुत असंतुष्ट' हो गये हैं; इस स्थिति से चाणक्य पूरा लाभ उठाता है। अपनी सफलता पर उसे पूर्ण विश्वास है ; फिर भी अलका से कहे हुए 'चाणक्य अपना कार्य

अपनी बुद्धि से साधन करेगा,'—जैसे वाक्य उसकी कूटनीतिज्ञता के गौरव के सामने हमारा मस्तक झुकाने वाले नहीं है?

कुसुमपुर को सामने देखकर चाणक्य के हृदय में सोई हुई बाल-स्मृतियों जाग उठना काव्य-कला की दृष्टि से सुन्दर है। सुवासिनी के प्रति हृदय में उठती कसक भरी आवाज सुनकर भी विचलित न होना चाणक्य के चरित्र की दृढ़ता का द्योतक है। आत्माभिमानयुक्त संकल्प की भयानक रमणीयता पर उसका मुग्ध होना भी सुन्दर है। हाँ, अभिनय की दृष्टि से एक पृष्ठ का यह स्वगत-कथन बहुत बड़ा हो गया है।

शकटार का चित्रण स्थिति में सहयोग देने की दृष्टि से सफल है और उसके वक्तव्य से नन्द के क्रूर अत्याचारों का स्पष्ट परिचय मिलता है। 'सहायता, दुःख, सावधान'—जैसे सहानुभूतियुक्त शब्दों को सुन कर उसके कहे हुए वाक्य बहुत सुन्दर हैं। हाँ, क्षण-क्षण में गिर पड़ते शकटार से लम्बे वाक्य कहलाना आलोचकों को खटक सकता है।

दृश्य के आरम्भ में मालविका का यह स्वगत प्रश्न—'क्या चन्द्रगुप्त के लिए असत्य बोलना होगा?'—उसके हृदय की ओर सङ्केत तो करता है, परन्तु दूसरे ही क्षण मञ्च से उसके चले जाने के कारण पाठक उसको जल्दी ही भूल जाता है।

सातवाँ दृश्य—सेनापति मौर्य की स्त्री के प्रति नन्द के व्यवहार से लेखक उसके अत्याचार का एक और दृश्य दिखाना चाहता है। नन्द का स्वगत-कथन उसकी मानसिक स्थिति का अच्छा परिचय देता है। 'जारजपुत्र', 'नीचजन्मा'—जैसे अपमानजनक शब्द सुनकर मगध के पूर्व सम्राट् महाराज की हत्या करके सिंहासन पानेवाले नन्द का अत्याचारी हो जाना स्वाभाविक ही है। दृश्य के अन्त में राक्षस का पत्र पाकर नन्द उत्तेजित हो जाता है, परन्तु पत्र में लिखा क्या है इसकी सूचना न देकर लेखक ने पाठकों की जिज्ञासा बढ़ाई है—'राक्षस और सुवासिनी को चाहे जिस दशा में हो, पकड़ लाओ।' नन्द की यह

आशा सुनकर चाणक्य की पूर्व योजना सफल होते देख उसकी सफलता में पाठकों का विश्वास और भी बढ़ जाता है।

आठवाँ दृश्य--आरम्भ में चन्द्रगुप्त द्वारा फिलिप्स के द्वंद्व-युद्ध में मारे जाने की सूचना मिलती है। यवनों की गति-विधि का परिचय इसी प्रसंग मे मिल जाता है। परन्तु पर्वतेश्वर तो पहले से चाणक्य के साथ है। उसे इन सब बातों को देखने का अवसर कैसे मिला ? क्या वह चाणक्य की इस आज्ञा का—'तुम मेरे साथ मगध चलो',--उल्लंघन कर पीछे ही रह गया था ?

मौर्य और शकटार का परिचय उत्तेजित जनता को सफल ढंग से दिया गया है। 'मैं उन सब पीड़ित, आघात- जर्जर, पददलित लोगों का संरक्षक हूँ जो मगध की प्रजा हैं,'--चन्द्रगुप्त का यह क्षत्रियोचित कथन सुन्दर है जिससे जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में उसे पूरी सफलता मिलती है। शकटार की रक्षा का भार स्वय निसंकोच लेकर वह उसका प्रिय बन जाता है। आगे का दृश्य देखने के लिए इस समय हमारी उत्सुकता बहुत बढ जाती है।

नवाँ दृश्य—तृतीय अक का अंतिम दृश्य। नन्द की जीवन-लीला की समाप्ति के पश्चात् इसमें चन्द्रगुप्त मगध का सम्राट् बनाया जाता है। नन्द के पक्ष की अति निर्बलता के कारण उसे पराजित देखकर कोई आश्चर्य नही होता और मच पर की गई नन्द की हत्या का भयानक कर्म देखकर यह प्रश्न ही मन में होता है कि अपने साम्राज्य में जो सम्राट् ऐसा निंदित था, वह इतने दिन तक सिंहासन पर रह कैसे सका ? नन्द के बन्दी हो जाने के बाद चाणक्य का आकर उसे अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाना उसकी विवशता को मुँह चिढ़ाना ही है। क्रियाशीलता की दृष्टि से यह दृश्य सफल है; परन्तु आगे के कार्यक्रम के सम्बन्ध में कोई निश्चित संकेत यहाँ न रहने से पाठकों को कोई उत्सुकता नहीं रह जाती।

चौथा अंक

पहला दृश्य—पर्वतेश्वर के वध और कल्याणी की आत्महत्या की भयानकता से पूर्ण साधारण दृश्य। इतिहास मे सिकदर से युद्ध के पश्चात् पौरव का कोई विवरण नहीं मिलता। इसलिए नाटककार उसके चरित्र का विकास अपनी इच्छानुसार करने को स्वतत्र था। परन्तु इस ग्रथ में पर्वतेश्वर का जो चित्रण मिलता है, वह उस प्रशनीय वीर के अनुपयुक्त समझा जायगा। एक बार उसका चरित्र ऊपर उठा कर यदि उसकी मद्यप्रियता और लपटता दिखाकर नीचे न गिराया गया होता तो क्या हानि थी? पिता के विरोधी के प्रति अपने प्रणय को बढ़ते देख कठोरता से 'प्रेम पीडा को पैरो से कुचलने' वाली कल्याणी का सवेतयुक्त चित्रण ऐसा है कि पाठकों की सहानुभूति उसके साथ हो जाती है। मच पर दो दो हत्याएँ इस दृश्य का एक दोष है और दृश्य के अन्त में केवल एक वाक्य कह कर चाणक्य का अपनी हृदय-हीन निष्ठुरता का परिचय देना, दूसरा। चन्द्रगुप्त के दक्षिणापथ जाने की सूचना पाठक की उत्सुकता बढाती है। नन्द का विरोध करने वाली मगध की प्रजा निष्कलक कल्याणी की हत्या का क्या अर्थ निकालेगी—यह भी हम जानना चाहते है।

कल्याणी के मरने पर चाणक्य का आकर यह कहना, 'चन्द्रगुप्त तुम आज निष्कटक हुए,'—उसकी क्रूर निष्ठुरता से युक्त है, इस कथन से यह ध्वनि भी निकलती है कि मच के पीछे छिपा हुआ चाणक्य जैसे रास्ता देख रहा था कि कब कल्याणी मरे और कब मै चद्रगुप्त को उसके निष्कटक होने की बधाई दूँ।

दूसरा दृश्य—पिता की अनुपस्थिति में सुवासिनी ने नद की रगशाला में प्रवेश किया था, पिता को पुन. पाकर उनकी सरक्षता में रहने को उसका तैयार हो जाना भारतीय गार्हस्थ्य धर्म के सर्वथा

अनुकूल है। अपनी प्रेमिका सुवासिनी से कहा हुआ राक्षस का यह कथन,—'क्या तुम नहीं जानती कि मेरे भीतर एक दुष्ट प्रतिभा सदैव सचेष्ट रहती है ? अवसर न दो, उसे न जगाओ।'—बड़ा विचित्र है। अब तक हमें उसकी दुष्ट या शुभ किसी प्रकार की प्रतिभा का कोई परिचय नहीं मिला है। हाँ, दृश्य के अंत में सुवासिनी के निश्चय से क्षुब्ध होकर, चाणक्य के प्रति उसके आकर्षण की आशंका से 'किसी दूसरे' को सम्राट् बनाने की बात सोच कर मगध में विद्रोह की आग फैलाने की बात से अपनी नीचता का परिचय वह अवश्य देता है। अब तक उसने तत्व को कोई काम किया नहीं है, आगे वह क्या करेगा, किसे चन्द्रगुप्त का प्रतिद्वंद्वी बनाएगा, यह सब जानने के लिए हमारी उत्सुकता बढ़ती है।

तीसरा दृश्य—कथा विकास के लिए सुन्दर दृश्य जिसमें मगध-परिषद् में मत-विरोध की सूचना मिलती है। चाणक्य की ओर से सुवासिनी का मन हटाने के लिए राक्षस ने झूठ ही यह कह कर कि चाणक्य ने तुम्हारे पिता का अपमान किया है, चरित्र की क्षुद्रता का हीनतम परिचय दिया है। क्या उसके 'भीतर सदैव सचेष्ट रहने वाली दुष्ट प्रतिभा' इतना ही काम कर सकती है ? नवीन यवनाक्रमण की सूचना, आगे होने वाले युद्ध और उसके परिणाम के लिए पाठकों को चिंतित करती है। परिषद् की इच्छा के विरुद्ध होकर चाणक्य के विजयोत्सव को रोकने का कारण दृश्य के अन्त में मालूम होता है कि पाटलीपुत्र षड्यन्त्रों का केन्द्र हो रहा है। एकान्त में सुवासिनी को पाकर चाणक्य का अपने को वश में न रख सकना, आँखों में उसकी 'दुर्बलता' का नवीन चित्र दिखाई देना, एक कलापूर्ण संकेत है जो सूचित करता है कि निष्ठुर कर्मों में आनन्द लेने की क्रूर प्रतिज्ञा करने वाला चाणक्य भी हृदय रखता है, किसी अलौकिक लोक का जीव नहीं, दुर्बल मानव-समाज का ही एक प्राणी है। इतने वर्ष पश्चात्

जिन्हें पाया है, उन्हीं माता-पिता के रुष्ट होकर चले जाने का चन्द्रगुप्त पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह जानने के लिए हम उत्सुक हैं।

चौथा दृश्य—भावपूर्ण सुन्दर दृश्य जिसमें संकेतों द्वारा भयंकर संघर्ष की निरंतरता से ऊबे, 'घने प्रेम-तरु तले' का सुखद शीतल विश्राम चाहते चंद्रगुप्त के भावुक हृदय से पाठक को परिचित कराया गया है। अधिकार-सुख और पद के आडम्बरपूर्ण गौरव-सम्मान से ऊब कर आज वह प्रेममय साथी की मधुर मुस्कान का भूखा है जिसका वह विश्वास कर सके, जिसमें स्वत्व की अभिन्नता का सरस अनुभव कर सके। 'स्मरण आता है मालव का उपवन और उसमें अतिथि रूप में मेरा रहना !'—चंद्रगुप्त के इस वाक्य से मालविका के प्रति उसके आकर्षण की स्मृति का पता लगता है। सरल बालिका मालविका 'बहुत दिनों में' सजा-सजाकर बनाई सुमनों की एक माला पहनाकर ही अपनी चिरसंचित अभिलाषा पूरी करती है। पश्चात्, 'स्मृति और अनुराग को सुलाकर अपने चिरदुखी जीवन का अन्त करने के लिए' वह स्वयं सो जाती है। 'आज घातक इस शयनगृह में आयेंगे ?'—यह सूचना पाकर मालविका के जीवन के लिए पाठक चिंतित हो जाते हैं।

पाँचवाँ दृश्य—साधारण दृश्य। अदूरदर्शी शासक की भाँति माता-पिता के जाने का कारण समझने का प्रयत्न न करके चाणक्य से जवाब तलब करना चन्द्रगुप्त के गौरव के अनुकूल नहीं है। इसी तरह ब्राह्मणत्व पर गर्व करने वाले दूरदर्शी और विज्ञ अमात्य चाणक्य का क्षुब्ध हो उठना भी प्रकृति की गम्भीरता का परिचय नहीं देता। 'स्वर्गीय कुसुम' मालविका की हत्या की सूचना पाकर चन्द्रगुप्त के साथ पाठक भी एक बार 'आह' करके रह जाता है। नाटककला की दृष्टि से यह हत्या कहाँ तक आवश्यक थी, यह विचारणीय है। राक्षस हत्यारों का नेता बना और युद्ध में उनके साथ पकड़ा न जाकर भाग निकला उसके 'अंतर में सदैव सचेष्ट रहने वाली दुष्ट प्रतिभा' के दूसरे कार्य की

यह सूचना पाठक की उत्सुकता बढ़ाती है। माता-पिता, गुरुदेव, मालविका और सिंहरण सभी के चले जाने के बाद, षड्यन्त्रों के केन्द्र पाटलीपुत्र में अकेला चन्द्रगुप्त कैसे रहेगा, आगामी यवनाक्रमण का सामना कर सकेगा या नहीं आदि जनने के लिए हम उत्सुक हैं।

छठा दृश्य—नाटक का कदाचित् सबसे बड़ा दृश्य जिसमें कथा की गति-विधि के सम्बन्ध में बहुत सी बातें मालूम पड़ती हैं। 'राक्षस अब यवन-सम्राट् सिल्यूकस की कन्या को पढ़ाने के लिए वहीं रहता है और यह सारा कुचक्र उसी का है,'—इस तरह एक नये देशद्रोही की उत्पत्ति आगामी युद्ध का परिणाम अनिश्चित कर देती है; परन्तु आंभीक का इस युद्ध में यवनों का साथ न देकर उनका विरोध करने को तैयार हो जाना भारतीय सफलता के लिए एक कलापूर्ण संकेत है। 'चन्द्रगुप्त और यवनबाला के परिणय' का प्रस्ताव चाणक्य को करते देख कर हम यह जानने के लिए उत्सुक होते हैं कि स्वाभिमानी यवन सम्राट् उसे किस रूप में स्वीकार करेगा।

भावों के उत्थान-पतन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह दृश्य सफल कहा जायगा। देश-द्रोह-सम्बन्धी अपने पिछले कार्य से असन्तुष्ट आंभीक के सामने अलका को देश में जागृति फैलाते देख, पूर्व नीच कर्म का प्रायश्चित करने के लिए उत्तेजित होकर पहले तो उसका तैयार हो जाना, परन्तु दूसरे ही क्षण राज्य-त्यागने की समस्या सामने आने पर पुनः मोह में पड़ जाना, उसके-से चरित्र वाले व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। सुवासिनी और चाणक्य का कोमलतम सम्बन्ध स्वस्थ वासना के मानवीय धरातल को नीचे छोड़कर त्याग और संयम के स्वर्गीय क्षेत्र की ओर बढ़ता है। ब्राह्मणत्व पर गर्व करने वाला चाणक्य इस प्रकार कर्मक्षेत्र में अपनी शक्तियों का चरम विकास और इंद्रियों का पूर्ण निग्रह करके आर्य दाण्ड्यायन के आश्रम में पहुँचने का पुण्यपथ पा लेता है।

जान पड़ती है।

आठवाँ दृश्य--चाणक्य और सिंहरण की अनुपस्थिति में चन्द्रगुप्त की मानसिक स्थिति और युद्धनीति का परिचायक छोटा दृश्य। बात-बात में उत्तेजित होकर 'युद्ध में मरण से भी अधिक भयानक का आलिंगन करने के लिए' चन्द्रगुप्त का प्रस्तुत हो जाना उसके आत्म-विश्वास का तो कम, पर मानसिक अधीरता का अधिक परिचय देता है। 'एक क्षण विश्राम न करके अश्व की पीठ पर ही समय बिताना' साहसी चन्द्रगुप्त के योग्य कथन है।

नवाँ दृश्य—भावप्रधान सुन्दर दृश्य, यौवन, प्रेम और स्मृति की काव्योपम व्याख्या ने जिसे महत्वपूर्ण बना दिया है। कार्नेलिया के हृदय में चन्द्रगुप्त के प्रति स्मृति जगाने के लिए सुवासिनी यवन-शिविर में बन्दी होकर आई है, पर हम देखते हैं कि कार्नेलिया स्वयं ही चन्द्रगुप्त की ओर आकृष्ट है और नहीं चाहती कि यवन-सम्राट् उससे युद्ध करे।—'क्या उसी चन्द्रगुप्त से युद्ध होगा आप ही ने मृत्युमुख से जिसका उद्धार किया था और जिसने आपके प्राणों की रक्षा की थी * * * जिसने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी!'—कार्नेलिया के ये वाक्य इसके प्रमाण हैं। 'कल युद्ध होगा।'—विजय की पूरी आशा लिए सिल्यूकस के मुख से ये शब्द सुनकर आगे का समाचार जानने को हम उत्सुक हैं।

दसवाँ दृश्य—युद्ध का अनिश्चित परिणाम-सूचक दृश्य। चाणक्य के 'समीप रहने से चन्द्रगुप्त की विजय की हमें आशा होती है। चंद्रगुप्त के पराक्रम की अग्नि में घी डालने का काम' चाणक्य ने एक चर को सौंपा है, किसी नायक को सौंपता तो क्या हानि थी? आम्भीक का सिल्यूकस के प्रति यह कथन—'मैं सदा प्रवंचक रहा, परन्तु यह प्रवंचना कुछ महत्व रखती है,' सुन्दर है। 'और समय चाहे मालव न

मिले, पर प्राण देने का महोत्सव पर्व वे नहीं छोड सकते'—चद्रगुप्त से कहा गया सिंहरण का यह वाक्य उसकी गर्वोक्तिप्रियता के अनुरूप ही समझा जायगा।

ग्यारहवाँ दृश्य—युद्ध का अन्त। सिल्यूकस की पराजय। चन्द्रगुप्त के प्रति कार्नेलिया के प्रेम का परिचय देना और सिल्यूकस को 'सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने' की चन्द्रगुप्त की महत्ता से यवन सम्राट् को चकित कराना, सक्षेप में ये ही इस दृश्य के सकेत हैं। 'मेरा कर्तव्य मुझे पुकार रहा है। मैं रणक्षेत्र से भाग नहीं सकता, चंद्रगुप्त के हाथो से प्राण देने में ही कल्याण हैं'—सुवासिनी से कहे गए ये सुन्दर वाक्य अकर्मण्य राक्षस के मुख से निकलने पर अपनी सुन्दरता खो देते हैं। सुवासिनी को लेकर भाग जाना उसका प्रकृति के अनुकूल है।

बारहवाँ दृश्य—चाणक्य की दूरदर्शिता को सत्य सिद्ध करने वाला दृश्य। भारतसम्राट् चन्द्रगुप्त को कन्या देने की बात सुन कर एक बार उत्तेजित होकर सिल्यूकस शान्त और सहमत हो जाता है। पिता-पुत्री की भेंट का दृश्य सुन्दर है। खटकने वाली एक बात इस दृश्य में यह है कि नाटककार यवन सम्राट् और उसने सहचरो को शिविर मे न दिखा कर पथ में क्यो भटका रहा है। सार्वजनिक पथ पर पुत्री कार्नेलिया के हृदय की थाह या प्रेम की परीक्षा लेने के लिए सिल्यूकस का तैयार हो जाना बड़ा अनुचित है। पिछले दृश्य मे चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के सामने जो यवन सम्राट् अपनी पराजय स्वीकार चुका है, उसी का इस दृश्य मे साइबर्टियस और मेगास्थनीज के सामने 'युद्ध होगा, हम सबको मरना होगा' कहना कुछ जँचा नहीं।

तेरहवाँ दृश्य—पूर्वातिम दृश्य जिसमे चन्द्रगुप्त-पक्ष का 'सब विवाद मिट जाता है।' मौर्य सेनापति चाणक्य को मारने का असफल प्रयत्न करने पर क्षमा कर दिया जाता है और राक्षस भी इस ब्राह्मण

की महत्ता स्वीकारता है। गुरुवर के वध को प्रयत्नशील पिता के दंड की व्यवस्था करने वाले चन्द्रगुप्त में चाणक्य की तरह सब विश्वस्त होते हैं कि वह अपना कर्तव्य कर लेगा। 'चन्द्रगुप्त क्षमा का भिखारी नहीं, न्याय करना चाहता है। बतलाइए, पूरा विवरण सुनना चाहता हूँ और पिता जी आप शस्त्र रख दीजिये।'—चन्द्रगुप्त का यह कथन उसकी प्रकृति की उत्तेजना भर सिद्ध करता है, शासकोचित गंभीरता नहीं। यदि यह कथन निकाल दिया जाय तो विशेष हानि नहीं होगी। दृश्य के अन्त में 'आर्य, आप उस समय न उपस्थित होंगे ?'—चन्द्रगुप्त के इस प्रश्न के उत्तर में चाणक्य का उत्तर—'देखा जायगा' कुछ महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ता। यह प्रश्नोत्तर भी न रहता तो क्या हानि थी ?

चौदहवाँ दृश्य—नाटक का अन्तिम परन्तु साधारण दृश्य जिसमें चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस की सन्धि हो जाती है और चाणक्य के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर यवन सेनापति भारत सम्राट् को अपनी कन्या सौंपता है। आरम्भ इस दृश्य का सुन्दर नहीं हुआ है। 'आज मैं विजेता नहीं, विजित से अधिक भी नहीं, मै सन्धि और सहायता के लिए आया हूँ'—सिल्यूकस के इस कथन के उत्तर में चंद्रगुप्त का यह कहना—'कुछ चिंता नही सम्राट्' बिलकुल लचर और तिरस्कारपूर्ण है। फिर भी दृश्य का अतिमाश भारतीय गौरव का बढ़ाने वाला है।

चरित्र-चित्रण

साधारण जनसमाज जिन व्यक्तियों में असाधारण गुण देखता है, स्वभावतः उनका सम्मान करने लगता है, उनके आगे श्रद्धा से मस्तक झुकाने में अपना गौरव समझता है। समाज में उनके चरित्र की विशेषताओं की चर्चा बड़े चाव से होती है। धीरे धीरे उनकी महान् विशेषताएँ अतिरंजित रूप में प्रसिद्ध हो जाती हैं। उनका एक एक सूत्र अपनाकर अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार लोग गढ लेते हैं। इतिहासप्रसिद्ध ऐसे ही व्यक्तियों को नाटककार अपनी रचना के प्रमुख पात्र बनाता है जिनके चरित्र मानव हृदय को स्पर्श करने की क्षमता रखते हों। यह प्रयत्न वीर-पूजा का एक सुन्दर रूप है और इससे हमें नाटककार के राष्ट्रीयता के प्रति प्रेम का परिचय मिलता है।

'प्रसाद' जी भारत के प्राचीन गौरव पर गर्व करने वाले राष्ट्रीयता के चटक रंग में रँगे ऐसे ही कुशल नाटककार हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास के उस उन्नत हिंदू काल की प्रमुख घटनाओं को अपने ग्रन्थों के लिए चुना है जिस पर आज का कोई भी सभ्य देश गर्व कर सकता है। इतिहासप्रसिद्ध घटनाओं से घनिष्ठतम रूप में संबंधित पात्रों के प्रति अपने ग्रंथों में उन्होंने प्रेमीजनोचित श्रद्धा दिखाई है; उनके गौरव और महान् कार्यों का सविस्तार वर्णन किया है। किसी व्यक्ति के गुण-दोष की चर्चा यदि उससे संबंधित व्यक्ति द्वारा ही कराई जाय तो वह विशेष चमत्कारपूर्ण और प्रभावशालिनी नहीं होती। इसीलिए परोक्षरूप से अपने पात्रों के गौरव-गान का कलापूर्ण प्रयत्न 'प्रसाद' जी ने यह किया है कि प्रतिष्ठित भारतीय पात्रों की महत्ता से चमत्कृत होकर समकालीन विपक्षी—विदेशी वीर नायक और विदेशी यात्री—मुक्त कंठ से उनके असाधारण

गुणों की चर्चा करें। 'राज्यश्री' में चीनी यात्री हुएनसाँग और 'स्कंदगुप्त' में सिंहलकुमार धातुसेन अनेक बार हर्ष से क्रमशः सम्राट् हर्ष और युवराज स्कंदगुप्त की महत्ता से चकित होकर अपने प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत नाटक में पौरव पर्वतेश्वर, चंद्रगुप्त, चाणक्य और अलका की प्रशंसा नाटककार ने जगद्विजेता सिकंदर, यवन-सेनापति सिल्यूकस, मगध-अमात्य राक्षस इत्यादि के द्वारा कराई है। चंद्रगुप्त के मुख का तेज इतना असाधारण है कि उसे हारे-थके और शिथिल रूप में देख कर भी सिल्यूकस के मुख से निकल जाता है—'यह तो कोई बड़ा श्रीमान् पुरुष है!' दांड्यायन के आश्रम में सिकंदर भी चकित होकर पूछता है—'यह तेजस्वी युवक कौन है!' इसी तरह पौरव पर्वतेश्वर की वीरता की प्रशंसा सिकंदर करता है। अलका के साहस पर प्रसन्न होकर उसने उसे देखने की इच्छा प्रकट की है। चाणक्य की नीति और दूरदर्शिता से अमात्य राक्षस बार-बार चकित होता है और सम्राट् होने पर यवन सेनापति सिल्यूकस कहता है—उस बुद्धिसागर, आर्य साम्राज्य के महामंत्री, चाणक्य को देखने की बड़ी अभिलाषा थी।

परन्तु राष्ट्रीयता के भक्त होने के नाते, प्राचीन भारतीय गौरव की रक्षा करने के उद्देश्य से विदेशी महत् चरित्रों को विशेषतारहित रूप में चित्रित करना और इस प्रकार अपनों के प्रति पक्षपात दिखाना, किसी भी उदार साहित्यिक के लिए बहुत प्रशंसा की बात नहीं है और फिर सहिष्णु तथा निर्लेप भारतीय संस्कृति और गौरव पर गर्व करने वाले लेखक के लिए तो कदापि नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सभी विदेशी वीर कुछ ऐसी गुणरहित प्रकृति के चित्रित किए गये हैं कि उनके प्रति हम जरा भी आकर्षित नहीं होते। जिस जगद्विजेता सिकंदर ने भारतीय वीर पर्वतेश्वर के साहसपूर्ण शौर्य पर मुग्ध होकर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया था, वह इस नाटक में लूट,

हत्या और भय द्वारा आतंक फैलाने वाले हृदयहीन योद्धा के रूप में सामने लाया गया है। और उसकी बुद्धिहीनता सिद्ध करने के लिए आभीक, फिलिप्स, एनिसाक्रिटीज इत्यादि के सामने यवन-सेनापति सिल्यूकस 'अविवेकी' कह कर भर्त्सना करता है। लूट में मिली दारा की कन्या को उसने जबरदस्ती अपनी स्त्री बना कर नृशंस लुटेरा होने का ही परिचय दिया है, तभी तो 'वह देवकुमारी-सी सुन्दर बालिका सम्राज्ञी कहने से तिलमिला जाती है।'

यवन सम्राट् की तरह ही यूनानी सेनापति सिल्यूकस का चरित्र भी विशेषतारहित है—विशेषतारहित ही क्यों उसे तो 'प्रसाद' जी ने बिलकुल कायर और मूर्ख ही बना दिया है। सिंहरण के सामने से वह भाग निकलता है और मालव के युद्ध में यह पूछे जाने पर कि तुम युद्ध चाहते हो या संधि, उत्तर देता है कि हम दोनों के लिए तैयार हैं जिसका संकेत यह हुआ कि युद्ध टल जाय और प्राण-भिक्षा मिल जाय तो अति उत्तम। मूर्ख वह इतना है कि अलका के लिए सिंहरण द्वारा दो बार 'राजकुमारी' का सम्बोधन सुन कर भी गांधार-नरेश के सामने काँपते हुए स्वर में कहता है—मुझे नहीं मालूम था कि ये राजकुमारी हैं। दाण्ड्यायन के आश्रम में जब सिकंदर उससे पूछता है—'तुम्हारा चंद्रगुप्त से परिचय कब हुआ,'--तब सिल्यूकस का निरर्थक उत्तर है—मैं इन्हें पहले से जानता हूँ।

यवनों का दूसरा सेनापति फिलिप्स भी इसी प्रकार एक निर्लज्ज लंपट के रूप में हमारे सामने आता है जो एकांत में कार्नेलिया को पाकर, इधर-उधर देखकर जबरदस्ती उसका कोमल कर चूमना और इस प्रकार अपने उस प्रणय का परिचय देना चाहता है जिसे 'उसका हृदय पहचानता है।' परन्तु इसी क्षण जब चन्द्रगुप्त आकर, उसे गर्दनिया देकर धकियाता है, तो चुपचाप नतमस्तक वह चला भी जाता है। ऐनिसाक्रिटीज और मेगास्थनीज के चरित्र भी अनाकर्षक ही हैं।

साराश यह कि विश्व के इस महान् विजेता और उसके निकटतम सहायकों को इस रूप में चित्रित करना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है।

(१) प्रमुख पात्र-पात्रियाँ

चन्द्रगुप्त

स्वातन्त्र्य-प्रेमी यह युवक 'प्रत्येक निरपराध आर्य की स्वतन्त्रता' की घोषणा करता हुआ मच पर प्रवेश करता है। उसके स्वभाव में बालकों की सी चपलता है और देश-प्रेम सबंधी उसका दृष्टिकोण संकुचित है। 'हम मागध हैं और यह (सिंहरण) मालव। अच्छा होता कि यहाँ गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा भी देते'—चन्द्रगुप्त का यह कथन सीमित मनोवृत्ति का परिचय देकर दर्शकों को एक बार चौंका देता है; परन्तु दूसरे ही पल अपने विचारों की व्याख्या करके, 'आत्मसम्मान के लिए मर-मिटना ही जीवन है'—कह कर वह पाठकों की दृष्टि में अपने गौरवपूर्ण पद की रक्षा कर लेता है। भारत के भावी पतन के लिए चाणक्य को चिंतित देखकर उसका यह कहना—'यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ कुछ भी न रह सकेंगे'—उसके असीम आत्मविश्वास का परिचायक है। यवनों को भारत में शांति से आगे न बढ़ने देना और 'प्रतिपद में बाधा देना' उसने अपना कर्तव्य निश्चित किया है और इसके लिए शक्ति-भर वह प्रयत्न भी करता है। उसकी इच्छा है—'इस जगद्विजेता का ढोंग करने वाले को एक बार पराजय का पाठ पढ़ा दिया जाय—'और बड़ी योग्यता से अपनी यह इच्छा पूरी भी करता है।'

निर्भीकता उसकी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। सिंहरण ने अकेले आभीक

से निडर होकर वार्तालाप किया और उस समय उसकी सहायता के लिए चाणक्य था, चन्द्रगुप्त भी था और सम्भवतः आवश्यकता पड़ने पर अलका भी उसी के पक्ष में बोलती। चाणक्य ने मगध और पौरव के दरबार में निडर होकर जो वाक्य कहे उनके मूल में देश-प्रेम और राष्ट्र-कल्याण-भावना की ऐसी प्रभावशालिनी शक्ति थी जो अधिकांश श्रोताओं को अपने पक्ष में करने के गुण से युक्त है। परन्तु यवन-शिविर में जाकर, यवन-सेनापतियों से और आम्भीक जैसे देश-द्रोहियों से घिरे सिकन्दर के सामने चन्द्रगुप्त ने अत्यन्त साहसपूर्वक जिस निर्भीकता का परिचय दिया है, वह कहीं अधिक महान् है और स्वयं सिकन्दर भी उससे चकित रह जाता है। 'हमारी सेना तुम्हारी सहायता करेगी'—सिकन्दर की गूढार्थभरी इस उक्ति को सुनते ही चन्द्रगुप्त असीम आत्मविश्वासयुक्त स्वर में उत्तर देता है—'मुझे आपसे सहायता नहीं लेनी है। मैं यहाँ यवनों को अपना शासक बनाने को आमंत्रित करने नहीं आया हूँ। * * * । मुझे लोभ से पराभूत गान्धारराज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिये। मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ; परन्तु यवन-लुटेरों की सहायता से नहीं। * * * । लूट के लोभ से हत्या-व्यवसायियों को एकत्र करके उन्हें वीर-सेना कहना, रण-कला का उपहास करना है।'—निर्भीकता का कितना उत्तम परिचय इन वाक्यों से मिलता है! क्षुद्र हृदय आम्भीक यवन-सम्राट् के सामने चन्द्रगुप्त की ऐसी बातें कहते सुनकर सलाह देता है—'विनय से बातें करो'—और चन्द्रगुप्त वज्र-सा उत्तर देता है—'सत्य-हृदय भीरु-कायरों की सी वंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त रोटियों के लालच से या घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।'

[illegible] इतना है कि यवन-सेनापतियों से घिरे रहने पर भी [illegible] 'दम्भ' कर कुशल निकल जाता है। चाणक्य और

सिंहरण जब दोनों उसे छोड कर चले जाते हैं, तब भी वह धैर्य और साहस नहीं छोड़ता। युद्धक्षेत्र के समीर नायक और सैनिकों को उत्साहित करते हुए वीरोत्तेजक शब्दों में वह कहता है—नायक! तुम खड्ग पकड़ सकते हो और उसे हाथ में लिए सत्य से विचलित तो नहीं हो सकते? बोलो! चन्द्रगुप्त के नाम पर प्राण दे सकते हो? मैंने प्राण देने वाले वीरों को देखा है। चन्द्रगुप्त युद्ध करना जानता है। और विश्वास रखो, उसके नाम का जयघोष विजयलक्ष्मी का मंगलगान है। आज से मैं ही बलाधिकृत हूँ; मै आज सम्राट् नहीं, सैनिक हूँ! चिंता क्या? सिंहरण और गुरुदेव साथ न दें। डर क्या! सैनिकों! सुन लो, आज से मै केवल सेनापति हूँ और कुछ नहीं! जाओ, यह लो मुद्रा और सिंहरण को छुट्टी दो। कह देना कि तुम दूर खड़े होकर देख लो सिंहरण! चन्द्रगुप्त कायर नहीं है। जाओ।

सेनापति का पुत्र होने के नाते कुशलपूर्वक सैन्य सचालन की सहज योग्यता उसमे है। मगध का इन्द्रजालिक बनकर आतंकित यवन-सेना में नन्द के पास लक्षाधिक सेना होने की बात कह कर विद्रोह फैला देता है। कल्याणी के साथ आई हुई छोटी सी मागध सेना को भुलावा देता है कि विपाशा पार करने पर मगध साम्राज्य ध्वंस करना यवनों के लिए बड़ा साधारण काम हो जायगा। और यवनो का विरोध करने के लिए मागध सैनिक जब तैयार हो जाते हैं तब समझता है—'विपाशा और शतद्रु के बीच जहाँ अत्यन्त संकीर्ण भूभाग है वहाँ अपनी सेना रखो और सिकंदर के सामने इतना विराट प्रदर्शन होना चाहिये कि वह भयभीत हो जाय।' उधर सिंहरण को सुझाता है—थोड़े से साहसी वीर मुझे चाहिएँ। यवनों की जल-सेना पर आक्रमण करना होगा; विजय के विचार से नहीं, केवल उलझाने और उनकी सामग्री नष्ट करने के लिए।

मनुष्यता का एक लक्षण है उपकारी का कृतज्ञ होना और भार—

तीयों की प्रकृति में यह विशेषता जन्मजात समझनी चाहिए। यवन सेनापति सिल्यूकस ने सिंह से चन्द्रगुप्त की रक्षा की और इसलिए आमन्त्रित किए जाने पर चन्द्रगुप्त निशंक यवन-शिविर में वास करने चल देता है। पश्चात, मालव-युद्ध में सिल्यूकस जब दोनों ओर से घिर जाता है और यवन-सेना के साथ सेनापति के प्राण भी संकट में पड़ जाते हैं तब चन्द्रगुप्त 'कृतज्ञता का भार' हलका करने के लिए उसको जीवनदान देता है।

उसकी न्यायप्रियता भी असाधारण ही समझी जानी चाहिए कि पिता को रुष्ट करने के लिए जिन गुरुदेव से वह उत्तर चाहता है उन्हीं को मारने के लिए जब पिता को प्रस्तुत पाता है, तब उन्हें भी न्यायाधीन घोषित करता और उनका न्याय करने को तत्पर होता है। इस अवसर पर पिता से अस्त्र ले लेने के लिए उनका सिंहरण को आज्ञा देना यह सूचित करता है कि इस प्रसंग में वह पर्याप्त गम्भीरता से अपना दायित्व समझ रहा है।

चंद्रगुप्त के चरित्र की एक अत्यंत प्रिय विशेषता है—हृदय की भावुकता पर उसका संयमयुक्त नियंत्रण। तक्षशिला से स्नातक होकर लौटने पर जब नंदकुमारी कल्याणी प्रेम के उबालभरे स्वर में कहती है—'परंतु मुझे आशा थी कि तुम मुझे न भूल जाओगे'—तब चन्द्रगुप्त सरल ढंग से बात बदल कर उत्तर देता है—'देवि, यह अनुचर सेवा के उपयुक्त अवसर पर ही आ पहुँचा। चलिए शिविका तक पहुंचा दूँ।' कुछ दिन बाद एक बार पुनः कल्याणी उसी चन्द्रगुप्त को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती है, उसके शब्द हैं—'(युद्धक्षेत्र में आई हूँ) केवल तुम्हें देखने के लिए। मैं जानती थी कि तुम युद्ध में अवश्य सम्मिलित होगे और मुझे भ्रम हो रहा है कि तुम्हारे निर्वासन के भीतरी कारणों में एक मैं भी हूँ।' इस बार भी चन्द्रगुप्त धैर्य से काम लेता है—'राजकुमारी, मेरा हृदय देश की दुर्दशा से व्याकुल है। इस

ज्वाला में स्मृति-लता मुरझा गई है समय नहीं !' इस प्रकार कल्याणी अपने प्रथम दो प्रयत्नों मे विफल होती है। युद्धभूमि छोड़ कर मगध लौटने के पूर्व एक बार पुनः चद्रगुप्त के हृदय की थाह लेने के लिए उसने पुछवाया—'आप कब तक मगध लौटेगे ?' राजकुमारी का संकेत चंद्रगुप्त समझ जाता है और उसका निश्चित उत्तर है—मै सेनापति का पुत्र हूँ, युद्ध ही मेरी आजीविका है।

सिंधुकुमारी मालविका को मालवीय उद्यान में एकाकी पाकर चद्रगुप्त के मन में न जाने क्यों और कैसी भावना जाग जाती है कि वह उस सरल बालिका से पूछ बैठता है—'मालविका, तुमको कुछ गाना आता है।' उत्तर में वह सचेत करती है—'युद्धकाल है, देश में रणचर्चा छिड़ी है। आजकल मालव-स्थान मे कोई गाता-बजाता नहीं।'–और तभी सम्हल कर संयत स्वर में चद्रगुप्त अपनी सफाई देता है—'रणभेरी के पहले यदि मधुर मुरली की एक तान सुन लूँ तो कोई हानि न होगी।' इस सीधे-साधे वाक्य का गूढार्थ चद्रगुप्त ने स्वयं आगे स्पष्ट कर दिया है—शुभे, मै तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ।

बात यह है कि अवस्था-विशेष पर पहुँच कर मानव के भूखे हृदय में विलास की स्वस्थ वासना का स्वभावतः जन्म होता है। पशु में इस नैसर्गिक वृत्ति को दबाने की क्षमता नहीं होती और इसलिए जो व्यक्ति इस प्राकृतिक भूख के कारण जितना विकल हो जायगा, पशु-वर्ग से उसका उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, ऐसे व्यक्ति में मानवी संस्कारोचित संयम का अभाव रहेगा। परंतु निश्चित यह भी है कि अधिक समय तक सयम के बल पर यदि प्रकृति की इस पुकार को अधिकारपूर्वक अनसुना कर दिया गया तो हृदय विद्रोह करने लगता है। अतः संयम की स्थिति में मन को वासना से हटा कर दूसरी ओर टिकाने के लिए कोई आवश्यक और आकर्षक आधार चाहिए। यह शक्ति उसी समय तक बढ़ी रह सकेगी

जब तक आधार का आकर्षण रुचिकर नवीनता लिए रहेगा, इसके अनाकर्षक होते ही, आधार के अभाव की ठोकर खाकर, भूखा हृदय सचेत होकर पुनः अपनी भूख के लिए हाहाकार कर उठेगा।

यही स्थिति चद्रगुप्त की है। कल्याणी जब उसकी ओर प्रेम का प्रसाद लेकर सहर्ष और स्वतः बढती है तब कर्तव्य-भावना का उदय चंद्रगुप्त के भूखे हृदय को उसकी ओर से अपनी तरफ खीच लेता है। विदेशियों से युद्ध, दिग्विजय-प्रसग में अनेक छोटे-बड़े राजाओं से युद्ध—देश के प्रति कर्त्तव्य के ये विभिन्न अग जब तक उसे एकाग्र किए रहते हैं, कल्याणी के प्रेम का वह, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, तिरस्कार ही करता है, और मालविका के इस भोले-भाले प्रश्न को—'मागध, तुमको देखकर तो मैं चकित हो जाती हूँ! कभी इद्रजाली, कभी कुछ! भला इतना सुन्दर रूप तुम्हें विकृत करने की क्या आवश्यकता है?'—वह हँस कर टाल देता है, परवाह ही नहीं करता, कहता है—'तुम इन बातों को पूछ कर क्या करोगी?' और इतना कह कर वहाँ से चला भी जाता है।

परन्तु कर्तव्य के इस आधार से ज्योंही उसका मन ऊब जाता है, उसका भूखा हृदय चिल्ला उठता है—'मैं सबसे विभिन्न, एक भय-प्रदर्शन सा बन गया हूँ, कोई मेरा अतरग नहीं।' मालविका आज भी उसके सामने है। आज वह स्वय मालव-उद्यान वाले स्नेह-मिलन की याद दिलाता है—'स्मरण आता है मालव का उद्यान और उसमें अतिथि रूप में मेरा रहना!' मालविका इस बार स्वयं सचेत है। पहली बार चद्रगुप्त ने देशीय परिस्थिति की बात कह कर उसके सरल प्रेम की उपेक्षा की थी, आज वह सम्राट् की हार्दिक 'विछलन' का परिचय पाकर उसे सचेत करना चाहती है—'सम्राट्, अभी कितने ही भयानक सघर्ष सामने हैं।' चद्रगुप्त अपने को रोक नहीं पाता, कर्तव्य-पालन के नाम पर जिन सघर्षों में अब तक वह फँसा रहा,

उनमें कोई आकर्षण शेष नहीं है। इसलिए मालविका की बात सुनते ही उसका हृदय बिलख उठता है—'संघर्ष! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका! आशा और निराशा का युद्ध, भावों का अभाव से द्वंद्व! कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी संपूर्ण सूची में रिक्त चिह्न लगा देता है। मालविका, तुम मेरी ताम्बूलवाहिनी नहीं हो, मेरे विश्वास की, मित्रता की प्रतिकृति हो। देखो, मैं दरिद्र हूँ कि नहीं, तुमसे मेरा कोई रहस्य गोपनीय नहीं! मेरे हृदय में कुछ है कि नहीं, टटोलने से भी नहीं जान पड़ता।'

चंद्रगुप्त की महानता से मालविका परिचित हो चुकी है और उक्त कथन से सम्राट् की 'साधारण जन-सुलभ दुर्बलता' भी वह देख लेती है। अपने को विश्वास-योग्य पाकर उसका हृदय प्रसन्नता से नाच उठता है और 'बहुत दिनों पर बनाई हुई माला' चंद्रगुप्त को पहना कर वह संतुष्ट हो जाती है। पश्चात्, 'प्रियतम' की प्रसन्नता के लिए 'स्वर में स्वर्गीय मधुरिमा' भर, दो मधुर गीत गाकर मालविका अपने को धन्य समझती है। सम्राट् का अतृप्त मुग्ध हृदय मधुर और कलों का प्रसंग आते ही कह उठता है—'मालविका, मन मधुप से भी चंचल और पवन से भी प्रगतिशील है, वेगवान है।' सिंधु देश की सरल बालिका इस कथन का संकेतार्थ समझती और निश्चित परन्तु सीधे-सादे ढंग से उत्तर देती है—'मन का निग्रह करना ही महापुरुषों का स्वभाव है।'

कल्याणी और मालविका के अतिरिक्त ग्रीककुमारी कार्नेलिया से चंद्रगुप्त ने प्रेम किया और कालांतर में यही उसकी पत्नी बनी। विवाह के पूर्व कई बार चंद्रगुप्त की इनसे एकांत में भेंट हुई, और उसे इस बात का आभास भी हो जाता है कि कार्नेलिया मेरी ओर आकृष्ट है, परंतु किसी भी साक्षात् में इसने कोई ऐसा संकेत नहीं

क्या जिससे पता लगे कि इसके हृदय की 'महानता' कुछ झुकना चाहती है; अथवा 'मन की चचलता का वेग' उसके नियन्त्रण से बाहर हो रहा है। हाँ, मालव-युद्ध के पश्चात् संधि हो जाने पर एक बार चंद्रगुप्त ने कार्नेलिया से इस बात पर प्रसन्नता प्रगट की है कि मैं विस्मृत—'स्मृति को वह जीवन का पुरस्कार समझता है'—नहीं हुआ; परन्तु ग्रीककुमारी के मुख यह सुनकर—'परन्तु मैं कितने दूर देश की हूँ। स्मृतियाँ ऐसे अवसर पर दंड हो जाती हैं। अतीत के कारागृह में वंदिनी स्मृतियाँ अपने करुण विश्वास की शृंखलाओं को झनझनाकर सूचीभेद्य अन्धकार में सो जाती हैं'—उसके शब्दों के गूढ़ार्थ को न समझ कर वह कह जाता है—'ऐसा हो तो भूल जाओ शुभे! इस केन्द्रच्युत जलते हुए उल्कापिंड की कोई कक्षा नहीं। निर्वासित, अपमानित प्राणों की चिंता ही क्या!'—चंद्रगुप्त का यह कथन कार्नेलिया के प्रति उसके आकृष्ट होने का परिचायक ही है, परन्तु अस्वस्थ और अनियन्त्रित हृदय का वासनाजनित उद्गार कदापि नहीं।

चाणक्य

तक्षशिला विश्वविद्यालय का स्नातक जिसके 'दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है और कोमल हृदय में कर्तव्य के लिए प्रलय की आँधी चला देने की भी कठोरता है।'—निर्धनता के कारण गुरु-दक्षिणा-रूप में विश्वविद्यालय के भावी स्नातकों को एक वर्ष तक अर्थशास्त्र की शिक्षा देता है। व्याख्या की दृष्टि से अर्थशास्त्र के संकुचित अर्थ को स्वीकार न करके व्यावहारिक जीवन में सामाजिक राजनीति पर दृष्टि रखना ही वह अर्थशास्त्र-शिक्षा का सच्चा प्रयोग समझता है। मगध के बंदीगृह में उसने कहा भी है—'कात्यायन! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दंडनीति की

आवश्यकता है। * * *। मेरे पास पाणिनि में सिर खपाने का समय नहीं है।'

सतर्कता, स्वाभिमान, दूरदर्शिता और गौरवमय गम्भीरता, चाणक्य के चरित्र के इन चार महान् गुणों का परिचय हमें नाटक के प्रथम दृश्य में ही मिल जाता है। तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की बात सिंहरण के मुख से सुनते ही सतर्क होकर शिक्षकोचित प्रश्न करके उसकी परीक्षा लेता है—'जानते हो कि यवनों के दूत यहाँ क्यों आए हैं ?' भावी गांधारनरेश आम्भीक के गर्वपूर्ण प्रश्न—'बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में रह कर, मेरे अन्न से पल कर मेरे ही विरुद्ध कुचक्रों का सृजन ?'—का उत्तर स्वाभिमान भरे स्वर में देता है—राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इन माया-स्तूपों को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।'

आवेश में आकर उद्धत स्वभाव वाले आम्भीक के तलवार चला देने पर भी वह अपनी गौरवयुक्त गंभीरता से राजकुमारी को उसे लिवा ले जाने की आज्ञा देता है। देश की स्थिति का वह पूर्ण जानकार है और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति चंद्रगुप्त को समझाता है—'तुम लोगों को समझ कर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। * * *। आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे। आर्यावर्त का सर्वनाश होगा।' मगध अमात्य राक्षस का यह प्रश्न—'तुम तक्षशिला में मगध के गुप्त प्रणिधि बन कर जाना चाहते हो या मृत्यु ?' सुनते ही अपनी दूरदर्शिणी बुद्धि से उसका आशय समझ जाता है और निर्भीक स्वर मे उत्तर देता है—'जाना तो चाहता हूँ तक्षशिला, पर तुम्हारी सेवा के लिए नहीं और

सुनो, पर्वतेश्वर का नाश करने के लिए तो कदापि नहीं।' तक्षशिला में शिक्षण कार्य समाप्त करने के बाद मगध लौटने पर शकटार और अपने पिता की दुर्दशा की कथा सुनकर वह क्षोभ भरे स्वर में कहता है—'दो दो कुटुम्बों का नाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है। क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का सगठन मनुष्य ने किया था?' चाणक्य के क्षोभ का यह रूप उसके कार्यक्रम की भावी गति विधि का नियत्रण करता है।

निर्भीकता चाणक्य के चरित्र की ऐसी विशेषता है जिसका परिचय हमें उसके प्रत्येक कथन से मिलता है और ब्राह्मण के गौरव का प्रश्न आ जाने पर उसकी उत्तेजना और भी बढ जाती है। गाधारराज आभीक को फटकारने के बाद मगध-सम्राट् नद के दरबार में भी वह बिना सूचना दिए ही पहुँच जाता है। बौद्धों के पक्षपाती अमात्य राक्षस का विरोध वह भरे दरबार मे करता है और काफी जोरदार शब्दों में। उत्तेजित होकर सम्राट् नद जब उसका अपमान करता है, तब चाणक्य निर्भीकता से उसे सावधान करते हुए कहता है—'नंद, तुम्हारी धर्मांधता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी, उसमें नद-वश समूल उखड़ेगा। नियति-सुन्दरी के भँवों में बल पड़ने लगा है। समय आ गया है कि शूद्र राज-सिंहासन से हटाए जायँ, और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त हों।' अपना कार्य साधने के लिए पर्वतेश्वर को प्रलोभन वह देता है—'निरुपाय हूँ, लौट जाऊँगा। नहीं तो मगध की लक्षाधिक सेना आगामी यवन-युद्ध मे पौरव की पताका के नीचे युद्ध करती। वही मगध जिसने सहायता माँगने पर पचनदनरेश का तिरस्कार किया था।' परन्तु ज्योंही पर्वतेश्वर व्यग्यपूर्वक उसका तिरस्कार करता है त्योंही उसको सभा में डाँट देता है—'भविष्य इसका विचार करेगा कि ऋषि किन्हें कहते हैं। क्षत्रियाभिमानी पौरव! तुम इसके निर्णायक नहीं हो सकते। * * *। और स्मरण रखना, आसन्न

यवन-युद्ध मे, शौर्य-गर्व से तुम पराभूत होगे। यवनों के द्वारा समग्र आर्यावर्त पादाक्रात होगा। उस समय तुम मुझे स्मरण करोगे।'

मगध-सम्राट् नंद की आज्ञा से बंदी किए जाने पर बंदीगृह की निष्ठुर यन्त्रणा की कठोरता से वह तिलमिला तो जाता है, परन्तु दया की भिक्षा नहीं माँगता, राक्षस और वररुचि, दोनों के प्रस्तावो को तिरस्कारपूर्वक ठुकरा कर उसने प्रण किया है—'आज से मैं प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूँगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा। क्या कभी नहीं? हाँ, हाँ, कभी किसी पर नहीं। मैं प्रलय के समान अबाधगति और कर्तव्य मे इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा।' --जीवन भर चाणक्य अपने इस निश्चय पर अटल रहता है।

साधन के अभाव में बढ़ी हुई विरोधी शक्ति का सामना शक्ति से नहीं, युक्ति से किया जाता है। यही राजनीति है। चाणक्य इसे समझता है। सिकन्दर और पौरव के युद्ध में यह सोच कर कि भारतीय वीरों की हानि होगी, वह चन्द्रगुप्त और सिंहरण को जूझ जाने की सलाह नहीं देता। चारों ओर कठिनाइयाँ हैं, कहीं कोई सहारा नहीं और उनसे परेशान होकर सिंहरण कह जाता है—'विपत्तियों के बादल मॅडरा रहे हैं'--और तभी एक कुशल नीतिज्ञ की भाँति चाणक्य उसे समझाता है--'पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं और मेरी नीति-लता भी उसी भाँति विपत्ति-तम में लहलही होगी।' हाँ, केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा।'

राजनीति की दूसरी धारा यह है कि दाँत मे सोना दबा कर शत्रु का नाश नहीं किया जाता। साम, दाम, दंड, भेद, किसी भी रीति से विजय मिले, यही लक्ष्य रहना चाहिए। महाभारत के भयंकर युद्ध में पांडवपक्ष की विजय का मूल कारण श्रीकृष्ण की यही नीति थी। चाणक्य भी 'सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों।' इसीलिए

चन्द्रगुप्त और सिंहरण जैसे अद्वितीय वीरों को नट और सँपेरा बनाकर भी पर्वतेश्वर को यवनों से पराजित हो जाने देता है। मालवों की युद्ध-परिषद को गणराष्ट्र की पक्षपातिनी जान कर समझाता है—'चन्द्रगुप्त को यदि तुम लोग अपना सेनापति बना लोगे तो मालव और क्षुद्रक दोनों ही स्वतंत्र संघ हैं और रहेंगे। संभवतः इसमें प्राच्यों का एक गणराष्ट्र आगामी दिनों में और आ मिलेगा।' कल्याणी मगध लौटना चाहती है तो इस भय से कि कहीं मागध सेना वह अपने साथ वापस न ले जाय, उसे चन्द्रगुप्त के प्रेम का प्रलोभन देकर पूछता है—'चन्द्रगुप्त से क्या कह दिया जाय? * * *। उसका असीम प्रेमपूर्ण हृदय भग्न हो जायगा। वह बिना पतवार की नौका के सदृश इधर-उधर बहेगा।' इसी प्रकार राक्षस को रोकने के उद्देश्य से समझाता है—'यवनों को भ्रम में डालने के लिए क्षुद्रकों, मालवों और मागधों की सेना के प्रदर्शन से जिन विदेशियों को भयभीत किया है, उनका भ्रम बनाए रखने मे ही मगध-साम्राज्य का कल्याण है'—और उसकी उक्ति सुनकर अमात्य राक्षस को कहना ही पड़ता है—'आह ब्राह्मण! मैं स्वयं रहूँगा। यह तो मान लेने योग्य सम्मति है।' कुछ देर बाद राक्षस को एकांत में पाकर वह बताता है—'नंद को अपनी प्रेमिका सुवासिनी से तुम्हारे अनुचित सम्बन्ध का विश्वास हो गया है। अभी तुम्हारा मगध लौटना ठीक न होगा।' और इस तरह मगध लौटने की इच्छा बहुत समय के लिए मन से निकालने पर राक्षस को विवश कर लेता है। अपने कथन की पुष्टि के लिए एक दिन अपने ही सैनिक मागधों के रूप में भेज कर राक्षस को बन्दी कराना चाहता है और दूसरे दल द्वारा उसकी रक्षा करा लेता है। राक्षस इस अभिनय को सत्य समझ कर चाणक्य का कृतज्ञ होता है और भुलावे में आकर उसे अपनी अँगूठी दे देता है जिसकी सहायता से जाली पत्र लिख कर मगध-सम्राट् नंद को अमात्य राक्षस के

विरुद्ध करने में उसे पूरी सफलता मिलती है।

परिस्थिति का धीरतापूर्वक अध्ययन करके, परिणाम के सम्बन्ध में दृढ़ हो जाना आत्मविश्वास की पराकाष्ठा समझी जाती है। राजनीत की अनिश्चित फल वाली घटनाओं के विषय मे चाणक्य का आत्मविश्वास इसी सीमा तक पहुँचा हुआ है। 'महानगरी कुसुमपुर का ध्वंस और नन्द की पराजय' की संभावना की शंका जब अलका करती है तब चाणक्य का निश्चित उतर है—'अलके! चाणक्य अपना कार्य अपनी बुद्धि से साधन करेगा। तुम देखती भर रहो और जो मै बताऊँ करती चलो।' इसी प्रकार कात्यायन से भी आत्मविश्वास भरे स्वर में उसने कहा है—'वह तो होकर रहेगा जिसे मैंने स्थिर कर लिया है। वर्तमान भारत की नियति मेरे हृदय पर जलद-पटल में बिजली के समान नाच उठती है! फिर मै क्या करूँ?'

'प्रसाद' जी की एक प्रिय विशेषता यह है कि मगधकुमारी कल्याणी के आत्महत्या कर लेने पर निष्ठुरता की चरमावस्था रूप यह वाक्य—'चन्द्रगुप्त! आज तुम निष्कंट हुए'—कहने वाले क्रूर चाणक्य की आन्तरिक कोमलता का पता भी वे हमें नाटक मे दे देते हैं। तक्षशिला से लौटने पर मगध की पुरानी स्मृतियाँ उसके सामने नाच उठती हैं। यवन-सेना का प्रथम आक्रमण विफल करने के पश्चात् कुसुमपुर का ध्वंस करने के लिए जब वह पुनः अपने जन्मस्थान में प्रवेश करता है तब भी उसे याद आ जाती है कि यही मेरे जीवन का प्रभात हुआ था।

सुवासिनी उसकी बालसहचरी है। चाणक्य को सूचना मिली है कि उसने बौद्धधर्म स्वीकार कर नन्द की रंगशाला में प्रवेश कर लिया है। इसलिए सुवासिनी को देखते ही साधारण मानवीय दुर्बलता-परिचायक क्षोभयुक्त व्यंग्य करता है—'चलो, वारविलासिनियो के लिए भी एक धर्म की आवश्यकता थी।' परन्तु आगे चल कर वह

स्वयं सम्हलता है। उसे ज्ञात है कि पति-पत्नी-भाव से राक्षस-सुवासिनी का प्रेम विकसित हो चुका है। अतः अपनी प्रेमिका के सुख-संतोष और अपनी भावी शान्ति के लिए अद्‌भुत संयम से काम करता है और सहठ राक्षस का वरण करने के लिए सुवासिनी को विवश करता है। वासनायुक्त मानव-हृदय पर त्यागयुक्त संयम की यह कितनी महत्वपूर्ण विजय है!

व्यक्ति के कार्यों और विचारों की सार्थकता इसी में है कि पक्ष-विपक्ष के सभी सम्मानित सदस्य सतत उसकी प्रशंसा करें। चाणक्य को इस तरह की सबसे अधिक सफलता मिलती है। मगध-अमात्य राक्षस उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी है और उसीने बार-बार चाणक्य की प्रशंसा की है। मगध को बचाने के लिए यवनों को अटकाए रखने की उसकी योजना को सुनकर कल्याणी से राक्षस कहता है—'मै इसका मुँह भी नहीं देखना चाहता; पर इसकी बातें मानने के लिए विवश हो रहा हूँ।' आगे चल कर यवन-पराजय की कहानी सुनने पर उसके मुख से स्वतः निकल पड़ता है—'चाणक्य, विलक्षण बुद्धि का ब्राह्मण है, उसकी प्रखर प्रतिभा कूटराजनीति के साथ दिनरात जैसे खिलवाड़ किया करती है। * * *। चाणक्य! तू धन्य है! मुझे ईर्ष्या होती है।'

चाणक्य का दूसरा विरोधी पर्वतेश्वर है जिसने चन्द्रगुप्त के क्षत्रियत्व के सम्बन्ध में शंका करके उसके ब्राह्मणत्व की हँसी उड़ाई थी। यवनों द्वारा आर्यावर्त को पददलित होते देख वह भी स्वीकारता है—'ब्राह्मण, तुम्हारी बात सच हुई। मैं गर्व से भूला था। तुम्हारी बात न मानी। अब उसी का प्रायश्चित करने जाता हूँ। * * *। नृशंसता की बाढ़ उतारना आप ही का काम है।'

विपक्ष के जिन व्यक्तियों से हमारा परिचय होता है उनमें यवन-सेनापति और विश्वविजेता सिकन्दर मुख्य हैं। दोनों ने ही प्रखर

बुद्धि चाणक्य की प्रशंसा करके अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया और अपने साथ भारत का महत्व बढाया है।

सिंहरण

मालवगण मुख्य का यह कुमार साहसी, उत्साही और निर्भीक है। यों तो 'विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवो का वंशानुगत चरित्र' है; फिर उसे 'तक्षशिला की शिक्षा का गर्व भी है।' अध्ययन की गंभीरता अपने मे लाने की वह चिंता नहीं करता और स्वीकारता है— 'मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नही है जितनी अस्त्र-शास्त्र की।' और देश की सामयिक स्थिति की उसकी जानकारी भी दूरदर्शितारहित नहीं है। 'तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने' की उसे आज्ञा मिलती है और इसका पालन यह स्वाभिमानी युवक बड़ी रुचि और उत्साह से करता है। यवनों से मिल कर देश की स्वतंत्रता संकट में डाल देने वाले तक्षशिलाधीश के कुचक्र से वह परिचित हो गया है और सच्चे देशभक्त की तरह गांधार के 'इस पतन को वह अपना अपमान' समझता है। 'मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है। यही क्या, समग्र आर्यावर्त है'—राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत उसका यह कथन कितना महत्वपूर्ण है! निर्भीक यह युवक इतना है कि भावी गांधारनरेश आंभीक को सामने पाकर भी व्यंग्य करता है— 'कुचक्र वे ही कर सकते हैं जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनों की मित्रता के लिए स्वयं वाह्लीक तक गए थे। * * *। यवनाक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से जो पुलकित हो रहे हों। जिनका खड्ग-कोश (पुष्कल) स्वर्ण से भर गया है।' सिकंदर का दूत आकर सूचना देता है—'देवपुत्र ने आज्ञा दी है कि मालव-नेता मुझसे भेंट करे और मेरी जलयात्रा की सुविधा का प्रबन्ध करें।' इसके उत्तर मे बड़ी निर्भीकता से सिंहरण

कहला देता है—'सिकदर से मालवों की ऐसी कोई संधि नहीं हुई है, जिससे वे इस कार्य के लिए बाध्य हों। हाँ, भेंट करने के लिए सदैव प्रस्तुत हैं, चाहे सधि परिषद् में या रणभूमि में।' उसकी यह निर्भीकता निश्चय ही अभिनदनीय है।

आत्माभिमान की भी इस वीर युवक में कमी नही है और उसे पूर्ण विश्वास है--'वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा।' साहसी वह इतना है कि यवन सेनापति सिल्यूकस को मानचित्र की चाह करते और तलवार निकालते देख स्वय भी प्रस्तुत होकर उत्तर देता है—'मानचित्र के अधिकारी का निर्वाचन खड्ग करेगा, सावधान हो जाओ।' वीरता में यह किसी देशी-विदेशी वीर से कम नहीं है। मालवदुर्ग मे सिकदर को इसने ही बुरी तरह घायल किया है और इतिहासकारों का मत है कि यही घाव सिकदर की असामयिक मृत्यु का कारण हुआ। उसका देशभक्तयुवकोचित आदर्श है--'जन्मभूमि के लिए यह जीवन है' और शक्तिभर वह इस अनुकरणीय लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है।

भारतीयता की भावना इस वीर में बडी सशक्त है। मालवदुर्ग में यवन-सम्राट् सिकदर को घायल करके भी यवन-सैनिकों को आज्ञा देता है कि इसे उठा ले जाओ। मालव-सैनिक जब इसका विरोध-सा करते है क्योंकि 'उस नृशस ने निरीह जनता का अकारण वध किया है' और प्रतिशोध के लिए उत्तेजित हो जाते हैं तब सिंहरण उन्हें यह कह कर शात करता है—'ठहरो, मालव-वीरों, ठहरो। यह भी एक प्रतिशोध है। यह भारत के ऊपर एक ऋण था, पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है।' भारतीय गौरव-वृद्धि की दृष्टि से प्रतिशोध का यह रूप कितना महान् और चमत्कारपूर्ण है!

व्यक्ति की परीक्षा विपत्ति में होती है और यदि प्राण-संकट उपस्थित हो जाय तब मनुष्य किस धातु का बना है, इसकी परीक्षा

बहुत शीघ्र ही हो जाती है। सिंहरण के सामने भी एक बार यही स्थिति आती है। 'मालवदुर्ग का द्वार टूट चुका है और यवन-सेना भीतर आती है।' सिंहरण अपने चुने हुए सैनिकों के साथ भीतर घिर गया है। बाहर से किसी तरह की सहायता मिलने की आशा नहीं है। अतः निश्चित-सा है कि सभी मालववीरों के साथ मारा जायगा, परंतु सिंहरण इससे विचलित नहीं होता। इस स्थिति का सामना करने को वह सहर्ष तैयार हो जाता है। 'मालव के ध्वंस पर आर्यों का यश-मंदिर ऊँचा खड़ा हो सकेगा।'—प्रेमिका अलका से सात्वना-रूप में कहे गए ये शब्द कितने महत्व के हैं! सैनिकों को वह उत्साहित करता है—'कुछ चिन्ता नहीं, दृढ रहो। समस्त मालव-सेना मे कह दो, सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा।' ऐसे वीर और साहसी भारतीय युवक के रहते किसी भी देश की स्वतंत्रता सकट में कैसे पड़ सकती है!

कल्याणी

'प्रसाद' जी चित्रित प्रधान स्त्री-पात्रों के चरित्र में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका प्रेम वासना की पूर्ति के लिए नहीं होता। प्रेममय स्मृति की कसक को उन्होंने अत्यन्त आवश्यक, प्रकृति के नियम के रूप में देखा, परन्तु उन्माद और प्रलाप से उसे सदैव पृथक् रखा है। उनके पुरुष-पात्र तो क्या, स्त्रियाँ भी आदर्श प्रेम ही रखती हैं। अपने प्रेमी के संकेतमात्र पर अपनी समस्त अभिलाषाओं को कुचलकर समस्त आवेगों और उद्‌गारों को अपनी एक मधुर मुस्कान से छिपाकर, ठीक वैसे ही जैसे सागर की अगाध गम्भीरता छाती में बड़वानल छिपाये रहती है, हृदय में उठाने वाले भीषण आतरिक्त द्वन्द्वों के तूफान-रूप आँसुओं को वे इस तरह पी जाती हैं कि पाठक आश्चर्य-चकित और प्रभावित होकर उनके मुख की ओर न देखकर उनके श्रीचरणों की ओर निहारने लगता है। इसका यह तात्पर्य

नहीं कि वे अपने सुन्दर मनोराज्यों में विचरण करती ही नहीं अथवा भविष्य के सुन्दर सुख-स्वप्न नहीं देखतीं, वरन् यह है कि यह सब होते हुए भी अवसर पड़ने पर स्वयं ही हँसते-हँसते वे अपनी लालसाओं को मसल देती हैं। एक शब्द में, उनका प्रेम संयत और अत्यन्त त्यागपूर्ण होता है। अतीत की मधुर स्मृति उनके हृदय में गुदगुदी अवश्य किया करती हैं, पर उसके वशीभूत हो वे आत्मविस्मृत नहीं हो जाती। यही उनके चरित्र की विशेषता है।

कल्याणी का स्थान भी 'प्रसाद' जी चित्रित ऐसी प्रेमिकाओं में है। यद्यपि 'प्रसाद' जी ने नाटक की संकेतात्मक शैली के कारण चन्द्रगुप्त और उसके प्रेम की स्पष्ट व्याख्या नहीं की तथापि यह मानना होगा कि उसके चरित्र का विकास अत्यन्त मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। साथ ही, हम यह भी कह सकते हैं कि उसका चरित्र आदर्श बनाने की ओर 'प्रसाद' जी का उतना ध्यान अथवा प्रयास नहीं है जितना उसकी प्रकृति की स्वाभाविक दुर्बलता से हमें परिचित कराने की ओर।

कल्याणी मगध के दुराचारी राजा की सरल विचार वाली कन्या है। उसका हमसे परिचय नाटककार ने उस समय कराया है जब मगध के कुछ ब्रह्मचारी अपने शासक के अत्याचारों की निंदा करते हुए जा रहे हैं। उनके मुख से अपने पिता की निंदा सुनकर एक ओर तो वह अत्यन्त भोलेपन से कहती है—'मैं देखती हूँ कि महाराज से कोई स्नेह नहीं करता,' और दूसरी ओर जैसे विरक्त होकर अथवा 'प्रसाद' जी के व्यक्तिगत दार्शनिक विचारों से प्रभावित होकर प्रश्न-रूप में उसके मुख से निकल पड़ता है,—'इतना कदर्थित राजपद! जिसे साधारण नागरिक भी घृणा की दृष्टि से देखता है कितने मूल्य का है?'

उक्त वाक्यों के कहलाने का उद्देश्य कल्याणी के विचारों से हमें

परिचित कराना मात्र है। इसी प्रकार आगे भी जब कल्याणी को नीच जाति के दुराचारी राजा की कन्या समझकर पंचनदनरेश पर्वतेश्वर उससे विवाह करने का प्रस्ताव नहीं स्वीकार करता तब भी आवेश में आकर वह कहने लगती है—'पिता जी मैं पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लूंगी। मैं वृषल-कन्या हूँ? उस क्षत्रिय को यह दिखला दूंगी कि राजकन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नहीं। सेनापति को आज्ञा दीजिये कि आसन्न गांधार-युद्ध मे मगध की एक सेना अवश्य जाय और मै स्वयं उसका सञ्चालन करूंगी। पराजित पर्वतेश्वर को सहायता देकर उसे नीचा दिखाऊंगी।'—कल्याणी के इस आवेगपूर्ण उद्गार से हमें चकित न होना चाहिए। यह उद्गार ऐसी कोमल और सरल स्वभाव की युवती के ही हैं जो मदारी को सॉप का खेल दिखाते देखकर ही भोले भाव से कह उठती है—'बड़ा कौतुक है महाराज! इन नागों को ये लोग किस प्रकार वश मे कर लेते हैं।'

बात यह है कि भारतीय नारी का हृदय कुसुम से भी कोमल होता है और पत्थर से भी कठोर,—यों वह सदैव भोलीभाली है, सरल हृदय है और छल-प्रपञ्च से अनभिज्ञ है, पर यदि अवसर आ पड़ता है तब वह अपने हाथ से ही अपने पति और पुत्र तक के अपमान का बदला लेने के लिए, आत्मगौरव और सम्मान की रक्षा तथा अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए, स्वय ही जीवन-सबंध-विच्छेद करने को कटिबद्ध हो जाती है। मध्यकालीन भारत के इतिहास में ऐसी अनेकानेक स्त्रियों के बलिदान के गौरवपूर्ण और अमर वर्णन मिलते हैं। राजस्थान के इतिहासकार टाड साहब ऐसे स्त्री-चरित्रों से बड़े ही प्रभावित हुए थे। कल्याणी का उक्त उद्गार बहुत-कुछ इसी श्रेणी का है, परन्तु उसमें स्वाभाविकता अधिक है, आदर्श और अपमान का ध्यान कम। इसीलिए वह पर्वतेश्वर के

पास युद्धस्थल में पहुँचकर भी निराश होकर लौट आती है। सभतः उसके चरित्र से सम्बन्ध रखने वाली यह घटना कुछ पाठकों को जटिल और विषम जान पड़ेगी।

कल्याणी चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। मगध के मौर्य सेनापति के जिस पुत्र के साथ उसने अपनी बाल्यावस्था के बहुत से दिन बिताये थे, वयस्क होने पर उसी चन्द्रगुप्त से प्रेम हो जाना स्वाभाविक ही है। जब चन्द्रगुप्त लगभग पाँच वर्ष के लिए तक्षशिला में विद्याध्ययन करने जाता है तब कल्याणी उसकी मधुर स्मृति को लेकर सुनहले स्वप्न देखा करती है और एक दिन चन्द्रगुप्त के आने पर तथा उसके मुँह से यह शब्द सुनकर—'देवि, तक्षशिला में पाँच वर्ष रहने के कारण यहाँ के लोगों को पहचानने में विलम्ब होता है। जिन्हें किशोर छोड़कर गया था अब वे तरुण दिखाई पड़ते हैं। मैं अपने कई सहचरों को भी न पहचान सका।'—कल्याणी अत्यत उत्सुकता से पूछती है—'परन्तु मुझे आशा थी कि तुम मुझे न भूल जाओगे।

नाटककार ने कल्याणी के इस उद्‌गार का चन्द्रगुप्त से कोई उत्तर नहीं दिलाया। पर कल्याणी का आशय पूरा हो जाता है, वह चन्द्रगुप्त को अपने विचारों से अवगत करा देती है। वह अपनी प्रीति गुप्त रखना चाहती हो सो बात भी नहीं है। दरबार में जब उसका पिता चन्द्रगुप्त से नाराज होता है तब उसकी रक्षा के लिए उसी का पक्ष लेकर वह अपने पिता से अनुरोध करती है—'पिताजी, चन्द्रगुप्त पर ही दया कीजिए। एक बात उसकी भी मान लीजिये।' इसी प्रकार युद्धक्षेत्र में जब वह पर्वतेश्वर को नीचा दिखाने के लिए जाती है और वहाँ चन्द्रगुप्त उसको देखकर कहता है—'राजकुमारी का युद्धक्षेत्र में आना अनोखी बात है।'—तब कल्याणी स्पष्ट कह देती है—'केवल तुम्हे देखने के लिए। मै जानती थी कि तुम युद्ध में अवश्य सम्मिलित होगे।'

अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए कल्याणी ने ऊपर जो वाक्य कहे हैं उनमें मानव जीवन की प्रकृति का एक रहस्य निहित है। प्रीति करने वाला सदैव यही चाहता है कि किसी प्रकार अपनी प्रीति का अपने प्रिय व्यक्ति को परिचय दे दूँ; साथ ही वह यह भी जानना चाहती है कि उसका प्रिय व्यक्ति उससे प्रेम करता है या नहीं। पहली बात अर्थात् अपनी प्रीति को संकेतों, कार्यों, व्यापारों अथवा वचनों द्वारा व्यक्त करना तो मनुष्य मात्र के अधिकार में रहता है, पर प्रिय व्यक्ति उससे प्रेम करता है या नहीं, यह जानना और यदि वह प्रेम नहीं करता तो उसके हृदय में अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करना, सर्वथा उसके अधिकार की बात नही होती। कल्याणी भी पहला कार्य कर लेती है पर उसे यह ज्ञात नहीं हो पाता कि चन्द्रगुप्त भी उससे प्रेम करता है या नहीं। इस प्रकार की अनभिज्ञता की दशा में प्रायः दो बाते हुआ करती हैं। यदि प्रेम करने वाला सच्चा प्रेम नहीं करता अथवा उसमें धैर्य नहीं होता तब वह अपने प्रिय व्यक्ति से अपने प्रेम का प्रत्युत्तर न पाकर या तो बेचैन हो जाता है या अपने जीवन से निराश। इसके विपरीत, यदि उसका प्रेम सच्चा हो तो वह प्रेमी व्यक्ति के प्रेम का परिचय पाने को उत्सुक तो थोड़ा-बहुत रहता है पर यदि उसका कोई चिन्ह नहीं पाता, तब भी बेचैन अथवा निराश नही होता; प्रत्युत उसका प्रेम नित्यप्रति दृढ होता जाता है। कल्याणी का प्रेम प्रायः ऐसा ही है। बहुत समय तक उसको चन्द्रगुप्त के प्रेम का स्पष्ट परिचय नही मिलता। इस पर भी न तो कल्याणी अधीर होती है और न निराश। अन्त में उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है। चन्द्रगुप्त उसके सामने अपनी परिस्थिति स्पष्ट कर देता है। कल्याणी कहती है—'मुझे भ्रम हो रहा है कि तुम्हारे निर्वासन के भीतरी कारणों में एक मै भी हूँ।'

चन्द्रगुप्त—परन्तु राजकुमारी, मेरा हृदय देश की दुर्दशा से

व्याकुल है। इस ज्वाला में स्मृतिलता मुरझा गई है।

कल्याणी—चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त—राजकुमारी ! समय नहीं।

इस वार्तालाप से चन्द्रगुप्त के विषय में उसकी परिस्थिति साफ हो जाती है कि चन्द्रगुप्त उससे प्रेम अवश्य करता है पर देश के राजनीतिक झमेलों में वह इतना व्यस्त है कि उस ओर ध्यान देने को उसके पास समय नहीं। दूसरी ओर पर्वतेश्वर से भी वह अपने अपमान का बदला नहीं ले पाती। फलतः वह कुछ किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो जाती है और चाणक्य से जाकर कहती है—'आर्य, अब मुझे लौटने की आज्ञा दीजिये।'

चाणक्य—और चन्द्रगुप्त से क्या कह दिया जाय ?

कल्याणी—मैं नहीं जानती।

चाणक्य—परन्तु राजकुमारी, उसका असीम प्रेमपूर्ण हृदय भग्न हो जायगा। वह बिना पतवार की नौका के सदृश इधर-उधर बहेगा।

कल्याणी—आर्य, मै इन बातों को नहीं सुनना चाहती, क्योंकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है।

इसके पश्चात केवल एक बार कल्याणी के दर्शन और होते हैं। वह मगध के राजकीय उपवन में घूम रही है। उसका पिता नन्द मारा जा चुका है और मगध चन्द्रगुप्त के अधिकार में है। अपने ही उपवन मे बन्दिनी कल्याणी यह सोचती टहल रही है—'मैं वही तो हूँ जिसके संकेत पर मगध का साम्राज्य चल सकता था ? वही शरीर है, वही रूप है, वही हृदय है, पर छिन गया अधिकार और मनुष्य का मानदण्ड ऐश्वर्य। अब जीवन लज्जा की रंगभूमि बन रहा है।'

इसी समय वहाँ पर्वतेश्वर आ जाता है। मद्यप की दशा में उसका अपमान करना चाहता है। अपनी लाज बचाने के लिए छुरा निकाल वह उसका वध करती है। चीत्कार सुनकर चन्द्रगुप्त प्रवेश करता और

आते ही आश्चर्य से पूछता है—कल्याणी ! कल्याणी ! यह क्या ?

कल्याणी—वही जो होना था। चन्द्रगुप्त ! यह पशु मेरा अपमान करना चाहता था।

इस पंक्ति में बोलते हुए कल्याणी के हृदय को देखिये। बार-बार अपने प्रयत्न में असफल कुमारी-हृदय अपने पिता को, अपने पिता के राज्य को, सांसारिक सम्पत्ति-सम्बन्धी अपने समस्त वैभव को खोकर एकांत में कुछ देर रोने के लिए आती है और वहाँ भी उसका अपमान होता है। ठीक ऐसे ही समय यदि वह चन्द्रगुप्त को—उसी चन्द्रगुप्त को जिसके मुखचन्द्र की ओर जीवन भर वह टकटकी लगाये देखती रही, उसी प्रियवर को जो उसका एक मात्र अवलम्बन था, सर्वस्व था, पाकर जितना आवेग, विषाद और अधीरता से लड़ता हुआ प्रेम उसके हृदय में उमड़ा होगा, वह सब कल्याणी के 'चन्द्रगुप्त !' संबोधन से स्पष्ट है। परन्तु उद्वेग समाप्त नहीं होता और कल्याणी कहने लगती है—'मुझे भ्रष्ट करके, अपनी संगिनी बनाकर यह पशु (पर्वतेश्वर) पूरे मगध पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु मौर्य ! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को—वह था चन्द्रगुप्त।'

चन्द्र०—क्या यह सच है, कल्याणी ?

कल्याणी—हाँ, यह सच है। परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए। इसलिए उस प्रणय को, प्रेम-पीड़ा को, मैं पैरों से कुचल कर, दबा कर, खड़ी रही। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा।

हृदय का बबूला वहीं बैठ गया और चुप होकर कल्याणी ने अचानक छुरी मार कर आत्महत्या कर ली।

यही 'प्रसाद' चित्रित कल्याणी का चरित्र है। उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि जिस चन्द्रगुप्त के पीछे वह जीवन भर भटकती रही, जिसे प्राप्त करने का जीवन भर प्रयत्न करती रही, उसी को पाकर उसने अपने पिता की ममता को पीछे ठुकरा दिया। बहुत

कुछ ऐसा ही चरित्र प्रसाद जी की 'आकाशदीप' शीर्षक कहानी की पात्री चंपा का भी है। परन्तु दोनों में साम्य होते हुए भी कल्याणी का चरित्र विशेष महत्त्व का है। वह तो जिस प्रेमाकुर को जीवन भर हृदय के रक्त से सींचती रही है उसी के फूलने पर मुँह मोड़ लेती है। प्रेम प्रायः सभी नाटककारों के वर्णन का मुख्य विषय रहा है, परन्तु ऐसा चरित्र शायद ही दूसरा मिले। कल्याणी के चरित्र में दुर्बलताएँ हैं, पर उन्हीं के कारण वह हमारी सहानुभूति की पात्री बन सकी है।

अलका

ऐतिहासिक नाटकों में यद्यपि लेखक को देशकाल की परिस्थिति का ध्यान रखना पड़ता है तथापि नाटक को विशेष रोचक बनाने के लिए नाटककार को इतनी स्वतन्त्रता भी रहती है—और यह वाञ्छनीय भी है—कि वह अपनी रुचि के अनुसार कुछ ऐसे पात्रों की सृष्टि करे जिनके द्वारा अपने सिद्धातों, उद्देश्यों और आदर्शों को पाठकों के सामने रखने का अवसर उसे प्राप्त हो सके। अलका की सृष्टि प्रस्तुत नाटक में प्रसाद जी ने इसी उद्देश्य से की है। यह तक्षशिला की राजकुमारी है। इतिहास के आधार पर उसके अस्तित्व-अनस्तित्व के विवाद में पड़ना तो व्यर्थ है, परन्तु इतना निश्चित है कि इस देश-प्रेमिका का अनुकरण करना जीवनोद्देश्य बना कर भारतीय युवतियाँ भी अपने देश मे जागृति कर सकती हैं।

प्रथम दृश्य में अलका दयालु और गुणज्ञ नवयुवती के रूप में सामने आती है। सिंहरण की निर्भीकता से विशेष प्रभावित हो आम्भीक को रोक कर वह कहती है—'भाई! इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छंद हृदय में कितना वेग है! यह अवज्ञा भी स्पृहणीय है; जाने दो।' और अपमान, तिरस्कार और क्रोध से पागल भाई को पहुँचा कर सिंहरण से वह स्पष्ट कह देती है—'मैं तुम्हारी सुख-शांति के लिए चिंतित हूँ।'

सिंहरण के प्रति व्यक्त किए गए अलका के उक्त दोनों उद्‌गारों से एक बात यह ज्ञात होती है कि वह एक साधारण युवती है जो किसी सुन्दर, हृष्टपुष्ट नवयुवक के स्वाभिमान और आत्मगौरव-संबंधी निर्भीक भावों का आदर करती है। 'साधारण युवती' उसे इसलिए कहना चाहिए कि समादर की यह सहज वृत्ति समान रूप से सबके मन में उत्पन्न होती है। इस भावोदय के पश्चात् साधारण और आदर्श युवती का अंतर समझ में आता है। यदि युवक की सुन्दरता, निर्भीकता, योग्यता और स्वास्थ्य आदि पर मुग्ध होकर निजी वासना की पूर्ति की वह आशा करती है तो उसे साधारण युवती ही समझा जायगा। इसके विपरीत, यदि वह इन गुणों पर इस कारण मुग्ध हुई है कि इनका आदर करना सामाजिक कर्तव्य है, मनुष्यता के नाते धर्म है, उनका अनुकरण करना उन्नति-पथ पर अग्रसर होना है, तो हम युवती के विचारों की सराहना करेंगे। स्वकर्तव्यपालन कर सकने पर उसे बधाई देंगे।

प्रसादजी ने अलका को इसी दूसरे प्रकार की आदर्श युवती बनाया है। वीर युवक सिंहरण की निर्भीकता और स्वातंत्र्यप्रियता का वह आदर करती है और उसके देश-प्रेम-सम्बन्धी विचारों से प्रभावित होकर स्वदेश-रक्षा के लिए स्वयं कटिबद्ध हो जाती है। उसे यह जानकर बड़ा दुख होता है कि उसका भाई विदेशियों से धन लेकर देश के शत्रु का मित्रकर्म कर रहा है और तब अलका सिंहरण को उत्साहित करती हुई स्वयं प्रतिज्ञा करती है—'जिस देश में ऐसे वीर युवक हों, उसका पतन असंभव है। मालव वीर, तुम्हारे मनोबल में स्वतंत्रता है, तुम्हारी दृढ़ भुजाओं में आर्यावर्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हें सुरक्षित रहना ही चाहिए। मै भी आर्यावर्त की बालिका हूँ। आम्भीक को मैं शक्ति भर पतन से रोकूँगी।'

यहीं से अलका का कार्य आरंभ होता है। स्वदेशीय शत्रुओं का

सहायक उसी का भाई है, इस कलंक का प्रायश्चित करने के लिए एक दिन राज्य के सुखों पर, संसार के वैभव पर लात मारकर 'उत्तरा-पथ की यह लक्ष्मी' कर्तव्य-पालन के आवेश में 'अनन्त पथपर' चल देती है। कारण पूछने पर स्वाभिमान-भरा उसका उत्तर है—'यवनो के हाथ स्वाधीनता बेच कर उनके दान से जीने की शक्ति मुझमे नहीं।'

अलका के मुख से इतना कहला कर प्रसादजी का एक उद्देश्य पूरा हो जाता है। वे यह बता देते हैं कि भारतीय युवतियों से देश के लिए क्या आशा की जा सकती है और इसके लिए उन्हे कितना बडा त्याग करना होगा। अलका ने पिता को छोडा, भाई को छोडा, राज्य और वैभव छोडा, देशीय स्वतंत्रता के लिए होने वाले यज्ञ में उसने अपने समस्त सुखों की आहुति दे दी। इतने बड़े और महत्वपूर्ण त्याग की आवश्यकता भी है। जितना महान् यज्ञ होगा, बलि भी उतनी ही महत्व की चाहिए और ऐसी ही आहुति देने के लिए देश की स्वाधीनता चाहने वाली भारतीय कुलदेवियों को तैयार होना होगा। उनके रणचंडी बनने पर ही देश स्वतंत्र हो सकेगा। अलका की तरह आर्य-पताका हाथ में लिए जब वे चारों तरफ गाती फिरेंगी—

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा-समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढप्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य-पथ है—बढ़े चलो, बढे चलो।
असंख्य कीर्ति-राशियाँ, विकीर्ण दिव्यदाह-सी,
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य-सिंधु में सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

तब देश को स्वतंत्र होते देर न लगेगी, इसे पूर्णतया निश्चित समझिए।

एक बात और है। प्रसादजी ने अलका के हाथ में आर्यपताका उद्देश्य-विशेष से ही दी है। फ्रास की देवी जान आव आर्क की भॉति जब भारतीय देवियों के हाथ में पताका होगी, तब कहॉ तक आभीक-जैसे विलासी युवक शर्म न खायॅगे। अलका की तरह जब वे पुकार कर कहेगीं—'वीर नागरिकों! देश पददलित होरहा है और तुम विलासिता में फॅस रहे हो! क्या यही मातृभूमि के प्रति तुम्हारा कर्तव्य है?'-तब क्या हमारे युवक अपने को सम्हाल सकेंगे? नाटक में भी तो अलका को उत्तेजना फैलाते देख कर आभीक प्रभावित होता है। चाणक्य से उसकी बातचीत सुनिए—

आभीक—यह अलका है! तक्षशिला मे (उक्त गीत गाकर) उत्तेजना फैलाती हुई यह अलका!

चाणक्य—हॉ आभीक! तुम उसे बदी बनाओ, मुॅह बन्द करो।

आभीक—(कुछ सोच कर) असभव! मै भी साम्राज्य में सम्मिलित होऊॅगा।

चाणक्य—यह मै कैसे कहूॅ? मेरी लक्ष्मी अलका ने आर्यगौरव के लिये क्या-क्या कष्ट नही उठाए? वह भी तो इसी वंश की बालिका है! फिर तुम तो पुरुष हो, तुम्ही सोच देखो!

आभीक—व्यर्थ का अभिमान मुझे अब देश के कल्याण मे बाधक न सिद्ध करेगा। आर्य चाणक्य, मैं आर्यसाम्राज्य से बाहर नहीं हूॅ।

देश-प्रेमिका अलका के देशप्रेम से प्रभावित आभीक के हृदय मे उठा हुआ उक्त उद्गार क्षणिक नहीं है। विगत युद्ध में यवनों का साथ देने वाला आभीक इस बार सचेत है, पूर्व कर्म पर उसे खेद है, ग्लानि है और उसी आवेश में आगे बढ़ कर वह अलका से कहता है—'बहन, तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। मै भूल करता था बहन! तक्षशिला के लिए अलका पर्याप्त है, आभीक की आवश्यकता न थी। मै देशद्रोही हूॅ, नीच हूॅ! तूने तो गॉधार के राजवश का मुख

उज्ज्वल किया है। राज्यासन के योग्य तू ही है।

नाटककार की यही अभिलाषा थी और हमें हर्ष है कि वह नाटक में पूर्ण होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या इससे देश की वर्तमान परिस्थिति को सम्हालने के लिए कुछ उत्तेजना मिलती है? अब क्या कल्पना के लोक में विचरण करने वाले हमारे विलासी युवक अपने भावी जीवन के लिए कुछ अवलंब पा सकेंगे अथवा प्रसादजी का उक्त चित्र केवल काल्पनिक है और अलका कवि-प्रसाद के कल्पनालोक में विहार करने वाली कोई दिव्य बालिका? इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ कहना नहीं है। भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को ऐसी अनेक कोमल कलेवरा कामिनियों के दिव्य चरित्रों और अलौकिक कामों पर विश्वास न होता हो तब तो बात दूसरी है, पर यदि हम इनके कार्यों को गर्व की दृष्टि से देखते हैं, अपने गौरव की चीज समझते हैं तो हमें प्रसादजी का कृतज्ञ होना चाहिये कि उन्होने हमारा एक खोया हुआ रत्न ढूँढ कर हमें पुन: प्रदान किया है और सो भी ऐसे अवसर पर जब हमें उसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

अलका में और भी गुण हैं। वह बुद्धिमती है, आत्माभिमानिनी है, सरल और निष्कपट प्रेमिका है, विनोदिनी और साहसी बालिका है। उसका प्रत्येक कार्य देशोन्नति से सम्बन्ध रखता है और साहस के रंग में रँगा पाकर उसका जीवन सार्थक हो जाता है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण है उसका वह संदेश जो उसने भाई आंभीक को दिया है—'राज्य किसी का नहीं है, सुशासन का है। जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। देखते नहीं, प्राच्य में सूर्योदय हुआ है। स्वयं सम्राट् चंद्रगुप्त तक इस महान् आर्य-साम्राज्य के सेवक हैं। स्वतन्त्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं। जिसकी खड्ग-प्रभा मे विजय का आलोक चमकेगा, वही वरेण्य है। उसी की पूजा होगी। भाई, तक्षशिला तेरी नहीं और हमारी भी नहीं। तक्षशिला आर्यावर्त का एक भूभाग है,

वह आर्यावर्त की होकर रहे इसके लिये मर मिटो। फिर इसके कणों में तुम्हारा ही नाम अंकित होगा। मेरे पिता स्वर्ग में इन्द्र से प्रतिस्पर्धा करेंगे। वहाँ अप्सराएँ विजय-माल लेकर खड़ी होंगी, सूर्य-मंडल मार्ग देखेगा और उज्ज्वल आलोक में मण्डित होकर गांधार का राजकुल अमर हो जायगा।'

अलका के इस महत्वपूर्ण संदेश के सम्बन्ध में चाणक्य के स्वर में स्वर मिला कर हम भी 'साधु, अलके साधु!' कहना ही यथेष्ट समझते हैं।

कार्नेलिया

ग्रीकसम्राट् की इस मातृविहीना भावुक पुत्री के चरित्र की उल्लेख्य विशेषता है उसका भारत-प्रेम -जिसका परिचय प्रथम दर्शन में ही 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' शीर्षक गीत गाकर वह देती है। सिंधु के मनोहर तट पर एक वृक्ष के नीचे बैठी यह युवती भावभरे जो शब्द कहती है—'सभी यात्रा करके जैसे मैं वहीं पहुँच गई हूँ जहाँ के लिए चली थी'—उनसे हम सहसा उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। दूसरे स्थान पर चन्द्रगुप्त से उसका कथन है—'मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामलकुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैलश्रेणी, हरीभरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप, भोले कृषक और सरल कृषक-बालिकाएँ, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएँ हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि, भारतवर्ष क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं; यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।' ग्रीकों के भारतीय आक्रमण का उसने यह सोच कर विरोध किया है—'यह निर्मल ज्योति का देश ,पवित्र भूमि, हत्या और लूट

से बीभत्स बनाई जायगी--ग्रीक इस शस्यश्यामला पृथ्वी को रक्तरंजित बनावेंगे।'

कार्नेलिया के चरित्र की दूसरी विशेषता है चन्द्रगुप्त के प्रति उसका प्रेम जो सर्वत्र संयत और मर्यादित रहता है। सिल्यूकस के सादर निमंत्रण से चन्द्रगुप्त यवनशिविर में कुछ दिन रहा था। वहीं इस ग्रीकबालिका का उससे परिचय होता है। पश्चात, दाड्यायन के आश्रम में जब सिकन्दर इस भारतीय राजकुमार के असाधारण तेज से चकित होकर उसका परिचय पूछता है तब जैसे कार्नेलिया के परिचय का रंग और गहरा हो जाता है और इसी समय दाड्यायन के मुख से उसकी भावी उन्नति के संबंध में भविष्यवाणी सुन कर चन्द्रगुप्त के प्रति उसका आकर्षण अधिक तीव्र होकर स्मृति का रूप धारण कर लेता है जिसका परिचय हमें फिलिप्स के अपमानित होकर चले जाने के पश्चात उसके इस कथन से मिलता है—'एक घटना हो गई, फिलिप्स ने विनती की उसे भूल जाने की। किन्तु उस घटना से और भी किसी का संबंध है, उसे कैसे भूल जाऊँ। उन दोनों में शृंगार और रौद्र का संगम है। वह भी आह कितना आकर्षक है! कितना तरंगसंकुल है! इसी चन्द्रगुप्त के लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की है भारतसम्राट् होने की! उसमें कितनी विनयशील वीरता है!'

चन्द्रगुप्त से विशेष घनिष्टता बढाने के पूर्व ही उसे भारत से विदा होना पडता है। इसका उसे दुख है। उसके हृदय के अंतर्तम प्रदेश में प्रेम की जिस सहज वृत्ति ने जन्म लिया है प्रिय पात्र की उपस्थिति जितनी प्रिय है उसकी अनुपस्थिति मनोरम स्मृति का रूप धारण कर उतनी ही विकलता का कारण बन जाती है। प्रेम और स्मृति के इस रहस्य से अवगत होकर ही, 'स्मृति जीवन का पुरस्कार है सुन्दरी!'—चन्द्रगुप्त के इस भावभरे वाक्य के उत्तर मे वह कहती है--'परंतु मै कितने दूर देश की हूँ। स्मृतियाँ ऐसे अवसर पर दंड

हो जाती हैं। अतीत के कारागृह में वंदिनी स्मृतियाँ अपने करुण विश्वास की शृंखलाओं को झनझना कर सूची-भेद अंधकार में सो जाती हैं !'

द्वितीय यवनाक्रमण के अवसर पर जब उसे पता लगता है कि इस बार युद्ध होगा चन्द्रगुप्त से तो पिता को जैसे पूर्व घटनाओं की स्मृति कराकर इसे रोकना चाहती है—'पिताजी उसी चन्द्रगुप्त से युद्ध होगा जिसके लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की थी ! * * * आप ही ने मृत्युमुख से उसका उद्धार किया था और उसीने आपके प्राणो की रक्षा की थी ! * * * और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी ! फिलिप्स का वह अशिष्ट आचरण पिता जी !' इतना विरोध करने पर भी विजयोल्लास की कामना में मत्त सम्राट सिल्यूकस जब कन्या का आशय नहीं समझ पाता तब वह एक 'दीर्घ निश्वास लेकर' रह जाती है और सुवासिनी से एक गीत गाने को कह कर जैसे अपनी मानसिक व्यथा भूल जाने का प्रयास करती है।

सम्राट सिल्यूकस दूसरे अवसर पर अपनी भावी विजय की संभावना की सूचना उसे देता है—'चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य उससे क्रुद्ध होकर कहीं चला गया है। आभीक इस युद्ध में तटस्थ रहेगा। पंचनद में चन्द्रगुप्त का कोई सहायक नहीं ! बेटी, सिकन्दर से बड़ा साम्राज्य, उससे बड़ी विजय, कितना उज्ज्वल भविष्य है !' पिता को प्रमुदित कर देने वाली इस कल्पना के उत्तर में वह केवल, 'हाँ पिताजी' कहकर मौन रह जाती है जिसकी व्याख्या स्वयं सिल्यूकस ने इस प्रकार की है—'हाँ, पिताजी ! उल्लास की एक रेखा भी नहीं ! इतनी उदासी !' इस उदासी का कारण वह निर्मम और निष्ठुर युद्धवीर क्या समझ सकता है ?

अंत में सिल्यूकस को चन्द्रगुप्त के प्रति पुत्री कार्नेलिया के आकर्षण का पता चल जाता है। इस कथन की सत्यता परखने के लिए उसने

कार्नेलिया की परीक्षा ली है। पिता-पुत्री का वार्तालाप इस प्रकार है—

कार्नेलिया—पिताजी !

सिल्यूकस—बेटी कार्नी !

कार्नेलिया—आप चिंतित क्यों हैं ?

सिल्यूकस—चन्द्रगुप्त को दंड कैसे दूँ ? इसी की चिन्ता है।

कार्नेलिया—क्यों पिताजी, चन्द्रगुप्त ने क्या अपराध किया है ?

सिल्यूकस—हैं ! अभी बताना होगा कार्नेलिया ! भयानक युद्ध, होगा, इसमें चाहे दोनों का सर्वनाश हो जाय !

कार्नेलिया—युद्ध तो हो चुका। अब क्या मेरी प्रार्थना आप सुनेंगे ? पिताजी ! विश्राम लीजिए। चन्द्रगुप्त का तो कोई अपराध नहीं, क्षमा कीजिए पिता ! (घुटने टेकती है)

सिल्यूकस—(बनावटी क्रोध से) देखता हूँ कि पिता को पराजित करने वाले पर तुम्हारी असीम अनुकंपा है !

कार्नेलिया—(रोती हुई) मैं स्वयं पराजित हूँ ! मैंने अपराध किया है पिताजी ! चलिए इस भारत की सीमा से दूर ले चलिए, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।

इस कथोपकथन में कार्नेलिया के प्रत्येक वाक्य से प्रिय चन्द्रगुप्त के प्रति असीम परन्तु मर्यादित प्रेम का परिचय मिलता है जिसके वेग का दमन करने में असमर्थ होकर उसका पराजित रमणीहृदय रो पड़ता है। पूज्य पिता के समक्ष हृदय की इस सहज सुकुमार वृत्ति की यह सलज्ज व्यंजना नितांत अभिनंदनीय है।

इस यवनकन्या के कोमल हृदय की भावुकता का परिचय उसके इस कथन से लगता है—'यहाँ आने पर मन उदास हो गया है। इस संध्या के दृश्य ने मेरी तन्मयता में एक स्मृति की सूचना दी है। सरला संध्या पक्षियों के नाम से शांति को बुलाने लगी है। देखते-देखते, एक-एक करके दो चार नक्षत्र उदय होने लगे, जैसे प्रकृति अपनी

सृष्टि की रक्षा हीरों की कील से जड़ी हुई काली ढाल लेकर कर रही है और मधुर पवन किसी मधुर कथा का भार लेकर मचलता हुआ चला जा रहा है।' दारा की कन्या को जब फिलिप्स 'सम्राज्ञी' कहने का उससे प्रस्ताव करता है तब बड़े तथ्यपूर्ण शब्दों में सहानुभूति के स्वर से वह कहती है—'ग्रीक लोग केवल देशों को विजय करके समझ लेते हैं कि लोगों के हृदयों पर भी अधिकार कर लिया। वह देवकुमारी-सी सुन्दर बालिका सम्राज्ञी कहने पर तिलमिला जाती है।'

फिलिप्स से उसके निम्नलिखित दो वार्तालापों से उसकी वाक्चातुरी का सुन्दर परिचय मिलता है--

फिलि०--कुमारी ! प्रणय के सन्मुख क्या साम्राज्य तुच्छ है ?

कार्नेलिया--यदि प्रणय हो।

फिलि०--प्रणय को तो मेरा हृदय पहचानता है।

कार्नेलिया--(हँस कर) ओहो, यह तो बड़ी विचित्र बात है !

फिलिप्स--कुमारी, क्या तुम मेरे प्रेम की हँसी उड़ाती हो!

कार्नेलिया--नहीं सेनापति ! तुम्हारा उत्कट प्रेम बड़ा भयानक होगा, उससे तो डरना चाहिए।

* * *

फिलि०—(कुछ सोचकर) कुमारी न जाने फिर कब दर्शन हों, इसलिए एक बार इन कोमल करों को चूमने की आज्ञा दो।

कार्ने०--तुम मेरा अपमान करने का साहस न करो फिलिप्स।

फिलि०—प्राण देकर भी नहीं कुमारी ! परतु प्रेम अंधा है।

कार्ने०—तुम अपने अंधेपन से दूसरों को ठुकराने का लाभ नहीं उठा सकते फिलिप्स !

भौतिक उन्नति के प्रति उसे किसी प्रकार का लोभ नहीं है और ऐहिक ऐश्वर्यों की क्षणिकता से भी वह परिचित है। भारतीय प्रदेश

की विजय-कामना में मग्न पिता को उसने समझाया है—'विश्राम लीजिए। विजयों की प्रवंचना में अपने को न हारिए। महत्वाकांक्षा के दाँव पर मनुष्यता सदैव हारी है।'

स्वाभिमान और आत्मगौरव की वीर भावनाएँ भी उसमें वर्तमान हैं। देश के प्रति प्रवंचक बनने वाले राक्षस को उसने बुरी तरह फटकारा है—'मेरे यहाँ ऐसे लोगों को देशद्रोही कहते हैं। * * * जिस देश ने तुम्हारा पालनपोषण करके पूर्व उपकारों का बोझ तुम्हारे ऊपर डाला है, उसे विस्मृत करके क्या तुम कृतघ्न नहीं हो रहे हो ?' सिल्यूकस को पराजित करके भारतीय सेना जब यवनशिविर पर आक्रमण करती है तब उसका यह कथन—'चिंता नहीं, ग्रीकबालिका भी प्राण देना जानती है।' आत्मसम्मान, ग्रीस का आत्मसम्मान जिए'—और इसके पश्चात् छुरी निकाल लेना इस बात के प्रमाण हैं कि कार्नेलिया वीर रमणी है।

सारांश यह कि भारत पर अनुरक्त इस ग्रीकबाला में महान नारी के सभी उज्ज्वल गुण—सहृदयता, सहानुभूति, भावुकता, विद्वता, योग्यता, प्रकृतिप्रेम, स्वाभिमान, आत्मगौरव आदि—वर्तमान हैं और इसके सबब ने 'चंद्रगुप्त' नाटक और व्यक्ति, दोनों का गौरव बढ़ाया है।

---

(२) साधारण पात्र-पात्रियाँ

पर्व्वतेश्वर

पंचनदनरेश पौरव पर्वतेश्वर के चरित्र की सबसे प्रधान विशेषता है उसका क्षत्रियाभिमान जिसका परिचय उसके प्रत्यक्ष दर्शन होने के पहले ही मागध राजसभा में उसके इस कथन से 'प्राच्य देश के बौद्ध और शूद्र राजा की कन्या से हम परिणय नहीं कर सकते'—मिल जाता

है। दूसरी बार इस गर्व का परिचय उसी की राजसभा में चाणक्य से बातचीत में मिलता है जब वह हँसकर कहता है—'शूद्रशासित राष्ट्र में रहने वाले ब्राह्मण के मुख से यह बात शोभा नहीं देती।' तीसरी बार पुनः वह अपने अभिमान का परिचय युद्ध के पूर्व मगध की सेना देख कर देता है। पुरुषवेश धारण किए नंदकुमारी कल्याणी उसे समझाती है—'मगध की सेना में एक छोटा-सा वीर युवक-दल इस युद्ध के लिए परम उत्साहित था। स्वेच्छा से उसने इस युद्ध में योग दिया है।' इतना सुनते ही पौरव पर्वतेश्वर अविश्वास और तिरस्कार के साथ हँसता हुआ कहता है—'प्राच्य मनुष्यों में भी इतना उत्साह!' चौथी बार अपना यह अहंकार वह युद्धक्षेत्र में ही प्रकट करता है। सारी गजसेना के छिन्न-भिन्न हो जाने पर सिंहरण उसे आकर सावधान करता है—'यह स्थान सुरक्षित नहीं, उस पहाड़ी पर चलिए।' पर्वतेश्वर उसकी सम्मति की उपेक्षा करके उसका परिचय चाहता है और उसके मुख से 'एक मालव' सुनते ही तिरस्कारपूर्वक कहता है—'मालव के मुख से ऐसा कभी नहीं सुना गया। मालव! खड्ग-क्रीड़ा देखनी हो तो खड़े रहो, डर लगता हो तो पहाड़ी पर जाओ।'

उसके चरित्र का यह दोष उसकी अनुपम वीरता के आगे दब-सा जाता है, कम-से-कम पाठक को यह अभिमान खटकता नहीं। युद्धक्षेत्र में उसका प्रथम महत्त्वपूर्ण वाक्य हम यह सुनते हैं—'युद्ध में जय या मृत्यु—दो में से एक होनी चाहिए।' सेनापति राजकुमार की वीरता का समाचार सुनाता है तो पर्व्वतेश्वर का उत्तर है—'प्रशंसा का समय नहीं है।' सेना के कुछ कायरों को भागते देखकर उसका निश्चय है—'बादलों से पानी बरसने की जगह वज्र बरसे, सारी राजसेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथी हों, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परन्तु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिए असंभव है।' उसकी दृष्टि में, 'वीरता भी एक सुन्दर कला है,' और वह इस कला के पुजारियों का प्रशंसक है।

विख्यात तक्षशिला के अध्यापक चाणक्य से परिचित होते हुए भी वह अशिष्टतापूर्वक कहता है—'बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे विरुद्ध कुचक्रों का सृजन!' इसी प्रकार देश की स्वतंत्रता के लिए आंदोलन की बात अलका के मुख से सुनते ही उत्तेजित और असंयत स्वर में अपने पिता गांधार-नरेश के सामने ही कहता है—'और तब अलका, मै अपने हाथों से तुम्हारी हत्या करूँगा।'

युवक-हृदय स्वभावतः महत्वाकांक्षी होता है, परन्तु नीचाशय आभीक महत्वाकांक्षा का भव्य भवन कृतघ्नता और देशद्रोह की नींव पर बनाना चाहता है। उसे क्षुद्र-हृदय समझ कर ही पंचनदनरेश पर्वतेश्वर ने स्पष्ट कह दिया है—'ऐसे कायर से मैं अपने लोकविश्रुत कुल की कुमारी का ब्याह न करूँगा।' यह सुनकर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए स्वयं पर्वतेश्वर से युद्ध न करके आभीक विदेशी और विजातीय शत्रुओ से मिल कर देशद्रोही बनता है। उसकी क्षुद्रता की पराकाष्ठा उस समय दिखाई देती है जब सिकंदर के शिविर में निर्भीक और साहसी चंद्रगुप्त को निर्भयतापूर्वक बाते करते देख कर भी सचेत नहीं होता, प्रत्युत 'शिष्टता से बात करने' का उपदेश देकर अपनी समझदारी का परिचय देना और चंद्रगुप्त के द्वारा एक थप्पड़-सा उत्तर पाना चाहता है—'स्वच्छ हृदय भीरु-कायरों की सी वंचक शिष्टता नही जानता। अनार्य! देशद्रोही आभीक! चंद्रगुप्त रोटियों के लालच से अथवा घृणाजनक लोभ से सिकंदर के पास नहीं आया है।'

गांधार में विद्रोह मचाने की बात सुन कर जिस अलका की आभीक हत्या करना चाहता था उसी के चले जाने के पश्चात पिता के सावधान करने पर अपनी भूल स्वीकारता हुआ आभीक कहता है—'मै लौट तो आता, परंतु यवन सैनिक छाती पर खड़े हैं। पुल बँध चुका है, नहीं तो' अर्थात् यदि मैं अब यवनों का विरोध करूँगा तो पहले गांधार का ही नाश होगा। उसका यह कथन निष्फल होते

हुए भी इतना सकेत अवश्य करता है कि प्रयत्न करने पर आभीक देशप्रेमी बन सकता है। द्वितीय यवन-युद्ध के पूर्व चाणक्य ने राष्टीय भावना-प्रचारक गीत गाकर देश में जागृति पैदा करती हुई अलका के उत्साहवर्द्धक दर्शन आभीक को कराए तभी आवेश में वह कह जाता है—'व्यर्थ का अभिमान अब मुझे देश के कल्याण में बाधक न करेगा * * * स्वीकार है ब्राह्मण! मै केवल एक बार यवनों के सम्मुख अपना कलक धोने का अवसर चाहता हूँ। रणक्षेत्र मे एक सैनिक होना चाहता हूँ। और कुछ नही।'

स्वदेशप्रेमसबधी अपने ये उद्गार आभीक व्यक्त कर ही रहा था कि सिंहरण के साथ अलका प्रवेश करती है। उसे देखकर पूर्ववत् आवेशयुक्त स्वर में ही, परन्तु भरे हुए हृदय से आभीक कहता है—'बहन! तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। मैं भूल करता था। बहन, तक्षशिला के लिए अलका पर्याप्त है, आभीक की आवश्यकता न थी।' इसी प्रसग मे उसकी स्वीकारोक्ति है—'मै देशद्रोही हूँ! नीच हूँ! तूने गाधार के राजवश का मुख उज्ज्वल किया है! राज्यासन के योग्य तू ही है।'

कुछ दिन बाद, मरने के कुछ क्षण पहले, यवनसम्राट के सामने भी आभीक स्वीकारता है—'हाँ सिल्यूकस! आभीक सदा प्रवंचक रहा, परन्तु यह प्रवचना कुछ महत्व रखती है।'

निश्चय ही यह प्रवचना उसके पूर्व पाप का अभिनदनीय प्रायश्चित है।

राक्षस

कुसुमपुर के इस बडे कलाकुशल 'विद्वान' से नाटक में सर्वप्रथम हमारा परिचय उस समय होता है जब मगध के विलासकानन में हम एक साधारण नागरिक को कुसुमपुर के 'कमनीय कुसुमो की रानी' सुवासिनी के प्रस्ताव पर यह कहते सुनते हैं—'राक्षस सचमुच राक्षस

होगा यदि इसमें आनाकानी करे।' यों तो, यह अपमानजनक सम्बोधन हम कुछ क्षण बाद भूल जाते हैं, क्योंकि अभिनयसहित उसके श्रेष्ठ गान के पश्चात मगधसम्राट उसे 'कुसुमपुर का एक रत्न' कहकर अमात्यवर्ग में नियुक्त कर देता है, परन्तु आगे चलकर पग-पग पर हमारे मन में शंका होती है कि कहीं सचमुच यह मूर्ख तो नहीं है। दरबार हो या राजपक्ष, विलासकानन हो या युद्धक्षेत्र, शत्रु के साथ हो या मित्र के, किसी भी स्थान पर, किसी भी दशा में, हम उसे कोई श्रेष्ठ कार्य करते या स्वाभिमानभरे शब्द ही कहते नहीं पाते।

अपनी विद्या और अपने परिष्कृत विचारों से वह परिचित है और 'कुसुमपुर के स्वर्गीय सुमन से प्रेम करता है।' सुवासिनी पर मगध-सम्राट् की दृष्टि है और उसके 'हस्तगत कर लेने पर राजकोप होगा,' यह जानते हुए भी सच्चे प्रेमी की भाँति वह निश्चय करता है—'सुवासिनी एक लालसा है, एक प्यास है। वह अमृत है, उसे पाने के लिए सौ बार मरूँगा।' भेंट होने पर अपनी बौद्धधर्मानुयायिनी प्रेमिका को समझाता है—'मैं स्वयं हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूँ; केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक—इतना ही कि संसार दुखमय है। * * *। मै इस क्षणिक जीवन को सुखी बनाने का पक्षपाती हूँ।' यहाँ तक सब सुन्दर है; परतु इसके पश्चात् वह अपनी कलाकुशलता का निर्वाह नहीं कर पाता।

मगध की राजसभा में पंचनदनरेश के यहाँ से विवाह प्रस्ताव ले जाने वाले मागध दूत के निराश होकर लौटने की सूचना देते हुए वह आवेश में कह जाता है—'यह धर्म का दंभ है, व्यग्य है। मैं इसका फल चखा दूँगा।' परन्तु कभी हम उसे तत्सबधी कोई प्रयत्न करते नहीं देखते। बस, केवल एक बार वन्दीगृह में चाणक्य को 'गुप्त प्रणिधि बना-कर' तक्षशिला भेजने की वह बात भर करता है जिसे उसने अस्वीकार दिया। तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा का प्रसंग छिड़ते ही जिस

बौद्धमत पर उसका पूरा-पूरा विश्वास नही है उसी की प्रशसा करते हुए कहता है—'केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्यों के लिए पर्याप्त है।'

इसके अनतर राक्षस अपनी मूर्खता और निर्लज्जता का परिचय देना आरभ करता है। 'क्या तुमने सबको मूर्ख समझ लिया है?' अपने इस प्रश्न के उत्तर में चाणक्य के मुख मे 'जो होंगे वे अवश्य समझे जायँगे,' सुनकर जरा भी बुरा नहीं मानता। चाणक्य के नियुक्त किए हुए अपने शरीररक्षकों के मुख से 'आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी है कि जब तक यवनो का उपद्रव है तब तक सबकी रक्षा होनी चाहिए, भले ही वह राक्षस क्यों न हो,' सुन कर भी कुछ परवाह नही करता। कल्याणी से वह कहता है—'एक बार मेरा चाणक्य से द्वन्द्वयुद्ध होना अनिवार्य है,' परन्तु फिर कभी भूल कर भी इस बात की चर्चा नहीं करता। और कुछ समय पश्चात ही उसके प्रशसनीय कार्यों की सूचना पाकर कह उठता है—'तू धन्य है! मुझे ईर्ष्या होती है।' इस सबध में उसने कल्याणी से कहा—'मगध को गर्व है राजकुमारी और उसका गर्व सत्य है। चाणक्य और चद्रगुप्त मगध की ही प्रजा हैं।' चाणक्य की एक छोटी-सी चाल पर वह पागलों की तरह बकने लगता है—'भूल थी, मेरी भूल थी! मूर्ख राक्षस! * * * नंद! क्रूरता और मूर्खता की प्रतिमूर्ति नद! एक पशु!'

चाणक्य की प्रशसा करने के बाद भी समझता वह उसे शत्रु ही है; पर इसी 'शत्रु पर विश्वास करके आगुलीय मुद्रा देकर अपनी भयकर मूर्खता पुन: का परिचय देता है। मगध दरबार मे सम्राट की हत्या होते ही ऐसे निश्चिन्त स्वर में, जैसे कुछ हुआ ही नहीं है, विचित्र ढंग से चाणक्य से प्रार्थना करता है—'मुझे भी कुछ बोलने का अधिकार है,' और फिर राज्यपरिषद की आयोजना की बात कह कर चाणक्य के संकेत से चद्रगुप्त का अभिषेक कर देता है।

उसके पतन की अंतिम सीमा उस समय देखने को मिलती है जब वह स्वदेश का शत्रु बनकर यवनों की दासता स्वीकारता है और यवनकुमारी कल्याणी जब उसे 'देशद्रोही' कहकर तिरस्कार करती है तब भी जरा नही लजाता। सिल्यूकस के पराजित होने पर उसकी आँखे खुलती हैं और वह आकर चाणक्य की महत्ता स्वीकार करके चद्रगुप्त से क्षमा माँग लेता है।

मालविका

सेवा और त्याग की प्रतिमूर्ति यह बालिका 'प्राकृतिक जीवन का सुन्दरपालना' सिंधुदेश की रहने वाली है जो 'और देशों को देखने' की इच्छा से घूमती-फिरती है। गाधारकुमारी अलका से स्नेह करके इसने तक्षशिला में कुछ दिन वास किया। इसी समय यवनाक्रमण होता है। अलका की इच्छा से इसने उद्भाड के पुल का मानचित्र बनाया और इस प्रकार शत्रुसेना के बीच जाकर अपनी सतर्कता और साहस का परिचय दिया। सिल्यूकस से युद्ध में सिंहरण को घायल देख यह सिंहरण के साथ चली आती है और उसके 'सहृदय व्यवहार' से प्रसन्न हो जाती है। मालव-उद्यान में उसका परिचय चन्द्रगुप्त से होता है जिसके 'सुन्दर रूप' और कार्य—'कभी इंद्रजाली कभी कुछ—' से आकर्षित हो स्नेह करने लगती है। 'स्नेह' के प्रभाव और परिणाम से परिचित होकर उसने कहा है—'स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है, परतु बिछुड़ने का भी भय होता है।' और उसका यह परिज्ञान ही उसे कल्याणी की तरह तिरस्कृत होने से रोकता है। प्रिय चन्द्रगुप्त के प्रति कभी वह अपने आकर्षण को प्रकट नहीं होने देती और इसलिए 'व्यस्त जीवन' की दुहाई न देकर चद्रगुप्त उसकी 'सरलता पर मुग्ध' हो जाता है।

शाति प्रिय इस सिंधुकुमारी को युद्ध भला नहीं लगता। उसके देश में 'युद्ध-विग्रह' होते भी नहीं; और इसलिए उत्तरापथ की

'बलवती युद्धपिपासा' देखकर उसका चकित होना स्वाभाविक ही है। मालवदुर्ग पर आक्रमण के समय अलका से उसका यह वार्तालाप उसकी प्रवृत्ति का परिचायक है—

अलका—इस आपत्तिकाल में एक आयुध अपने पास रखना चाहिए। तू कटार अपने पास रख ले।

मालविका—मैं डरती हूँ, घृणा करती हूँ। रक्त की प्यासी छुरी अलग करो अलका। मैंने सेवा का व्रत लिया है।

अलका—प्राणों के भय से शस्त्र से घृणा करती हो क्या?

मालविका—प्राण तो धरोहर है। जिसका होगा वही लेगा, मुझे भय से इसकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं।

प्रिय चंद्रगुप्त के लिए 'सब कुछ करना'—यहाँ तक कि झूठ बोलना भी—उसका निश्चय है। चंद्रगुप्त दक्षिणापथ की विजय करके लौटता है और मालविका गर्व से गदगद हो जाती है। परंतु, सम्राट के 'स्वागत' का कोई उत्साह राजधानी में न देख कर वह चाणक्य से कारण पूछती है और ब्राह्मण उसे 'चंद्रगुप्त के प्राणों की रक्षा का भार' सौंप देता है। चंद्रगुप्त अब तक मालविका के सुकुमार हृदय के अंत:प्रदेश में बसता था, अब इसे दिनरात उन्हें आँखों से ओझल नहीं होने देना है। सम्राट की ताम्बूलवाहिनी बन कर वह अपने सरल और स्नेहपूर्ण व्यवहार से 'विश्वास की, मित्रता की प्रतिकृति' हो जाती है। संघर्ष से ऊबे, शांतिसुख के लिए लालायित चंद्रगुप्त के हृदय पर अधिकार कर लेना मालविका के लिए इस समय कठिन नहीं है, चंद्रगुप्त इस ओर संकेत भी करता है, परन्तु वह संयम को हाथ से नहीं जाने देती और सहानुभूति-पूर्ण शब्दों में महानता के गौरव का स्मरण कराकर अपने अद्भुत आत्मनिग्रह का परिचय देती है। चंद्रगुप्त से उसका यह संलाप दोनों के हृदय और स्वभावों का परिचय देता है—

चंद्रगुप्त—मालविका ,देखो, मै दरिद्र हूँ कि नहीं, तुमसे मेरा कोई रहस्य गोपनीय नही ! मेरे हृदय में कुछ है कि नहीं टटोलने से भी नही जान पड़ता ।

मालविका—आप महापुरुष हैं; साधारण जनसुलभ दुर्बलता न होनी चाहिए आपमें। देव ! बहुत दिनों पर मैने एक माला बनाई है ! (माला पहनाती है।)

चन्द्रगुप्त—मालविका ! इन फूलों का रस तो भौंरे लेचुके हैं।

मालविका—निरीह कुसमो पर दोषारोपण क्यों ! उनका काम है सौरभ बिखेरना, यह उनका मुक्त दान है। उसे चाहे मधुप ले या पवन।

चन्द्रगुप्त--मालविका मन मधुप से भी चंचल और पवन से भी प्रगतिशील है, वेगवान है।

मालविका—उसका निग्रह करना ही महापुरुषो का स्वभाव है।

अंत में प्रिय चन्द्रगुप्त की रक्षा में स्वयं प्राण देकर वह अव्यक्त प्रेम की रक्षा के लिए निछावर हो जाती है। उसका अंतिम स्वगतकथन है—'जाओ प्रियतम ! सुखी जीवन बिताने के लिए · और मैं रहती हूँ चिरदुखी जीवन का अत करने के लिए। * * * यह चन्द्रगुप्त की शय्या है। ओह आज प्राणों में कितनी मादकता है ! मै ...... कहाँ हूँ ? कहाँ ! स्मृति ! तू मेरी तरह सो जा ! अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन बन जा !' और बस ! 'जीवन की स्मृति ! अंतर के आतुर अनुराग !' को संबोधिन करते-करते सो जाती है। अपने इस दुखी जीवन और उसके कारण की व्याख्या इसके बहुत पहले वह कर चुकी है—'फूल हँसते हुए आते हैं ,फिर मकरंद गिरा कर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरणी को भिगो कर चले जाते हैं ! एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है। निश्वास फेक कर चला जाता है। क्या पृथ्वी तल रोने के लिए ही है ! नहीं, सबके लिए एक ही नियम तो

था। अतः सिल्यूकस को, पूर्व की भाँति छोटे छोटे क्षत्रपों से नहीं, चक्रवर्ती सम्राट् चन्द्रगुप्त से लोहा लेना पड़ा। यवन-सेना इस युद्ध में बुरी तरह पराजित हुई और विजित प्रदेशों के साथ अपनी कन्या भी भारत-सम्राट को सौंपनी पड़ी। पश्चात, दोनों देशों में संधि हो गई।

प्रधान कार्य—मुसलमानों के पैर भारत में ईसा की बारहवीं शताब्दी के पश्चात जम सके। इसके पूर्व, लगभग पाँच हजार वर्ष तक भारतीय स्वतन्त्रता की कीर्ति बराबर उज्ज्वल बनी रही। बस, उस पर एक बहुत हल्का धब्बा है ग्रीकों की पंचनद-प्रदेशीय विजय का; पाश्चात्य इतिहासकारों ने अपने पक्षपात से, भारत पर बहुत पुरानी योरपीय जीत सिद्ध करने के उद्देश्य से, जिसका सविस्तार और सांगोपांग वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। उनके कथन का सारांश यह है कि यूनानी सेना का सामना भारतीय वीर किसी तरह न कर सके, अनेक बार उनसे ये पराजित हुए। विश्वविजेता सिकन्दर का विचार इस विजय से उत्साहित होकर समस्त भारत को पददलित करने का था, परन्तु अंत में अपने अतिविस्तृत साम्राज्य में किसी आंतरिक विद्रोह की सूचना पाकर उसने यह विचार स्थगित कर दिया और स्थल-पथ से अपनी सेना भेज कर स्वयं जलमार्ग से लौट गया।

परंतु इधर की ऐतिहासिक खोज से पता लगता है कि विदेशी इतिहासकारों का यह कथन नितांत पक्षपातपूर्ण और कल्पनाधारित ही है, तथा सिकंदर के भारत-विजय का विचार स्थगित करने, और इस प्रकार विश्व-विजय का लुभावना स्वप्न भंग होने, का मूल कारण यह था कि उसकी सेना पर भारतीय वीरता का आतंक बैठ गया था। यह बात पाश्चात्य इतिहासकारों ने भी स्वीकारी है कि पौरव पर्वतेश्वर की सेना ने यूनानियों का जिस वीरता से सामना किया था वह सिकन्दर को भी अभूतपूर्व और अतिउन्नत जान पड़ी थी तथा इसीलिए उसने

पौरव वीर से संधि करना उचित समझा था। इस युद्ध में दाँत खट्टे हो जाने पर विजयी यूनानी सेना का साहस टूट गया। इसी समय उसे मगध की उस लक्षाधिक सेना के सगठित होने की सूचना मिली जो पौरव-सेना से अधिक कुशल और शक्तिशालिनी थी। सिकंदर ने इसका सामना करने लिए अपनी सेना को सभी तरह से बार-बार समझाया; परतु आगे वढने के लिए वह किसी तरह तैयार न हुई। ऐसी स्थिति में, बहुत संभव है, हार खाने की आशका से, जीवन भर विश्व विजेता कहलाने के पश्चात भारत में पराजित होने के कलंक से बचने के लिए, विवश होकर सिकन्दर ने रावी तट तक आकर लौट जाना ही उचित समझा हो।

प्रस्तुत नाटक की रचना यही दूसरी बात सामने रख कर की गई है। नाटककार इसमें सिद्ध करना चाहता है कि भारत में रावी तट तक सिकन्दर के वढ आने का कारण था पंचनद-प्रदेश का उस समय छोटे छोटे राज्यों मे बँटा होना जिनमें पारस्परिक संगठन का अभाव था।' परन्तु पौरव पर्वतेश्वर की पराजय से चिंतित होकर स्वदेश की स्वतंत्रता को संकट में जान कर, अनेक भारतीय युवक सचेत हुए और उन छोटी छोटी शक्तियो को उन्होंने इस तरह सगठित किया को यवन-सेना को लौटते समय पग-पग पर बाधाओं और विरोधो का सामना करना पड़ा; अनेक प्रकार की क्षति उठानी पडी। स्वयं सिकन्दर ऐसे ही एक युद्ध में घायल हुआ और, कुछ इतिहासकारो का मत है कि इसी घाव के कारण बेबिलोनिया मे उसकी मृत्यु हो गई।

लगभग बीस वर्ष पश्चात् नए यूनानी सम्राट सिल्यूकस ने अपने पूर्वाधिकारी के अधूरे कार्य को पूर्ण करने का पुनः साहस किया। भारत की स्थिति इस समय तक बदल चुकी थी और छोटे-छोटे राज्यों के स्थान पर मगध के चक्रवर्ती सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का सुशासन था। सिल्यूकस इस परिवर्तन से पूर्णतः अवगत था और इसलिए उसके

साहस की हमें प्रशंसा करनी चाहिए। दो-चार छोटे-मोटे स्थानों को जीतने के बाद यूनानियों का सामना मगध की चतुरंगिणी सेना से हुआ। सिल्यूकस की वीर सेना ने शक्ति भर प्रयत्न किया, परन्तु भारतीयों के सामने उसके पैर उखड गए और चाणक्य की कूटनीति-युक्त दूरदर्शिता ने उन्हें भागने का रास्ता भी न दिया। अंत में सिल्यूकस को संधि करनी पडी और विजित प्रदेशों के साथ अपनी कन्या भी चन्द्रगुप्त को सौंपने मे उसने गौरव समझा।

साराश यह कि दो बार यूनानियों को भारत मे आगे बढने से रोकना और पश्चात्, अपने देश से उन्हें निकाल कर स्वतन्त्र भारत की कीर्ति की उज्ज्वलता बनाए रखना, इस नाटक का महत्वपूर्ण कार्य है चद्रगुप्त और चाणक्य जिसकी सिद्धि के लिए प्रयत्नशील हैं तथा लेखक ने जिसके सबंध में ग्रन्थ के प्रथम दृश्य में ही सकेत कर दिया है।

कार्य की अवस्थाएँ—पाँच अक के नाटक में विकसित होने वाली कथा के पाँच अग—आरम्भ, विकास, चरम सीमा, उतार और समाप्ति—स्पष्ट रहते हैं। प्रस्तुत नाटक चार अक का है जिनमें दृश्यों की सख्या क्रमश ग्यारह, दस, नौ और चौदह है। शास्त्रीय दृष्टि से आगे के अकों की सख्या घटती जानी चाहिए। 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम तीन अकों मे इस नियम का पालन किया गया है। चौथे अक के सबसे बडे होने का कारण यह है कि आरभ में लेखक ने दो अकों में इसे विभाजित करना चाहा था परन्तु नाटक के आदि से ही कथा का विकास इस ढग से हुआ कि केवल चार अकों में ही उसका विभाजन हो सका। इन चारों में यवनों के दो-आक्रमणों का वर्णन है—प्रथम यवन-सेना को भारतीय वीर आगे बढने का विचार छोडकर लौटने पर विवश करते हैं और दूसरी को पराजित करके सधि करने पर। दोनों आक्रमणों के अवकाश का समय मगध-शासन में आमूल

परिवर्तन करने में लगता है। इस तरह नाटक की दो कथाएँ हो जाती हैं। एक, सिकंदर का भारतागमन जिसका 'आरम्भ' अर्थात् यवन आक्रमण प्रथम अंक में होता है। इस कथा का 'विकास' अर्थात् यवनों का झेलम तट तक का प्रदेश जीत कर आगे बढ़ना, 'सीमा' अर्थात् पौरव पर्वतेश्वर को पराजित करके अपनी शक्ति का परिचय देना, और 'उतार' अर्थात् भयभीत यवन-सेना को स्वदेश लौटने के लिए विवश करना द्वितीय अंक के विषय हैं। इस प्रथम कथा की 'समाप्ति' तृतीय अंक में है; क्योंकि इसी में सिकंदर के भारत से जाने की बाकी कहानी है। इस अंक का शेषांश मगध-शासन-परिवर्तन द्वारा चन्द्रगुप्त को साधन-सपन्न बनाने से सम्बन्ध रखता है जिसे द्वितीय यवनाक्रमण की 'प्रस्तावना' कह सकते हैं। कारण यह कि मगध का सिंहासन पाने के पश्चात् ही यवनों की भारत-विजय के द्वितीय प्रयत्न को विफल करने में वह सफल हो सका।

चतुर्थ अंक में दूसरे यवनाक्रमण की पूरी कहानी है; कथा-विकास के पाँचों अंग एक ही दृश्य में दिखाए गए हैं और इसी से दृश्यों की संख्या बढ़कर चौदह हो गई है। सम्मिलित रूप से इस नाटक की सारी कथा का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

आरंभ—सिकंदर का भारतागमन। पर्वतेश्वर से अपने 'बद्धमूल वैर का प्रतिशोध' लेने के लिए गांधारराज आंभीक उसका स्वागत करता है। फलस्वरूप यूनानी सेना की शक्ति बढ़ गई और उसका कार्य सरल हो गया। सिकंदर का विरोध करने के लिए चन्द्रगुप्त और चाणक्य तैयार हुए। वे सर्वथा साधनहीन हैं, परन्तु दाण्ड्यायन की भविष्यवाणी सुन कर यवन सम्राट् अपनी सफलता के संबंध में चिन्तित हो जाता है और पाठकों के मन मे उत्सुकतामय आशा का उदय होता है।

विकास और सीमा—द्वितीय अंक में सिकंदर की यूनानी सेना

झेलम तक पहुँच जाती है। पर्वतेश्वर उसका विरोध करता, पर पराजित होता है। इस भारतीय नरेश के साहस से प्रभावित होकर सिकदर ने उसके साथ नरपति-सा व्यवहार किया, स्वय मैत्री का प्रस्ताव करके उससे सधि करली। यूनानी-विजय की यह चरम सीमा है। इस युद्ध में सिकन्दर की सेना शिथिल हो जाती है। अवसर पाकर चद्रगुप्त, 'पचनद के सैनिकों से भी दुर्द्धर्ष कई लक्ष मगध के रणकुशल योद्धा शतद्रु तट पर तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं और नंद के पास कई लाख सेना है' आदि बातो का प्रचार यूनानियों में करता है। परिणाम यह हुआ कि उन लोगों में आतक छा गया, एक प्रकार का विद्रोह फैल गया और सम्राट् के बार-बार उत्साहित करने पर भी यूनानी-सेना ने आगे बढने से इनकार कर दिया। विवश होकर सिकदर को लौटना पडा। सेना का कुछ भाग उसने थल-पथ से वापस कर दिया और शेष के साथ स्वय जलमार्ग से लौटा जिसका उद्देश्य यह था कि लौटते समय तो कुछ प्रदेश जीत ही लिया जाय। इस उद्देश्य में भी उसे सफलता न मिल सकी। चद्रगुप्त और चाणक्य के प्रयत्न से क्षुद्रक और मालव जातियों में सधि हो गई, चद्रगुप्त उनकी सम्मिलित सेना का नायक बनाया गया और मगध से आए गुल्म भी उसी के अधीन रहे। इस भारतीय सेना ने यवनों का पथ-पथ पर विरोध किया और बहुत क्षति पहुँचाई। इस प्रकार प्रथम यवन आक्रमण विफल हुआ।

उतार—तृतीय अक मे नौ दृश्य है। पहले दो मे भारतीयों के वीर कार्यों की चर्चा है और तीसरे में हँसता हुआ सिकदर नौका पर स्वदेश की ओर चल देता है। प्रथम यवनाक्रमण से इस प्रकार छुट्टी पाकर चाणक्य ने मगध के क्रूर शासन का अत करने और इस प्रकार चद्रगुप्त को भविष्य के लिए साधन-सम्पन्न बनाने की ओर ध्यान दिया। सिकदर को पराजित करने के लिए पहली बार मालवों और

क्षुद्रकों की सहायता चंद्रगुप्त को माँगनी पड़ी थी। अब वह स्वयं शक्तिशाली है और यह आशा की जाती है कि यवनों के पुनः आक्रमण को विफल बनाने में इस बार वह सरलता से सफल हो सकेगा। इस तरह मगध-शासन-परिवर्तन-संबंधी यह घटना अंतिम यवनाक्रमण को विफल बनाने के लिए बिखरी हुई भारतीय शक्ति को संगठित करने का महत्वपूर्ण प्रयत्न है जिससे आगामी संघर्ष में भारत के वीरों की विजय निश्चित हो जाती है।

समाप्ति—यवनों के नए सम्राट् सिल्यूकस का भयानक आक्रमण। अब वह अपनी 'पश्चिमी राजनीति से स्वतंत्र हो गया है और सिकन्दर के पूर्वी प्रांतों की ओर दत्तचित्त है।' स्पष्ट है कि इस बार यवनों का सेनापति अधिक निश्चिंत है और अंतिम संघर्ष के लिए तैयार है। भारतीय वीर उसका सामना करने के लिए बढ़ते हैं। घोर युद्ध मे यवन-सेना पराजित होती है और चाणक्य की चाल से 'समस्त ग्रीक शिविर बन्दी हो जाता है। मालव और तक्षशिला की सेना को हिरात के पथ में खड़ी करके यवनों का लौटना भी उसने असम्भव कर दिया है।' अन्त में संधि होती है। 'आर्यावर्त की नैसर्गिक सीमा तक का प्रदेश' और साथ में अपनी कन्या देने के लिए सिल्यूकस को तैयार होना पड़ता है। विश्वविजेता यवनों के दो प्रयत्नों को इस प्रकार विफल करके भारतीय वीरता का गौरवपूर्ण प्रदर्शन करने के पश्चात्, नाटक की सुखद समाप्ति होती है।

नायक कौन—शास्त्रीय दृष्टि से नाटक का नायक कहलाने का अधिकारी होता है वह व्यक्ति आदि से अंत तक जिसका घनिष्ठतम संबंध प्रमुख कार्य से बना रहे। आरम्भ में कार्य-संपादन की इच्छा लेकर जो पात्र सामने आता है, साधन जुटा कर कर्मवीर की तरह अपने पथ पर अग्रसर होता है, मार्ग में सफलता-असफलता की आशा-निराशा से आँख-मिचौनी खेलता हुआ अथक और अविश्रांत

गति से जो आगे बढ़ता जाता है और अंत में विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करके सफलता का सुस्वादु फल चखता है, नाट्यशास्त्र में उसी को नायक मानने की बात कही गई है। इस दृष्टि से चंद्रगुप्त को प्रस्तुत नाटक का नायक मानना चाहिए। भारत में यवनों के पैर जमने न देने और इस प्रकार विश्वविजयोन्माद में मत्त अलक्षेंद्र के आक्रमण को व्यर्थ कर भारतीय स्वतंत्रता की उज्ज्वलता को विशुद्ध बनाये रखने का प्रण जिस वीर ने किया है, सर्वथा साधनहीन होने पर भी अदम्य उत्साह, अनुपम धैर्य और अनुकरणीय अध्यवसाय के बल पर मार्ग में आनेवाली समस्त बाधाओं पर विजय और अपने इस महान कार्य में पूर्ण सफलता पाकर अन्त में मगध का ऐश्वर्य-संपन्न साम्राज्य और यवन राजकुमारी का पूर्वस्मृति की मधुरिमा से युक्त प्रेम जो वीर प्राप्त करता है, वह चन्द्रगुप्त ही नाटक का नायक होने योग्य है। ग्रन्थ का नामकरण उसीके नाम पर किये जाने से लेखक का स्पष्ट संकेत भी यही जान पड़ता है।

परन्तु संकट के प्रत्येक अवसर पर चाणक्य की दूरदर्शिणी बुद्धि का चमत्कार देख कर कभी-कभी दर्शक सोचने लगता है कि अपने शिष्य का भाग्यविधाता यह अद्भुत व्यक्ति क्यों न इस महत्वपूर्ण पद का अधिकारी समझा जाय? युवावस्था का अदूरदर्शी और आवेशपूर्ण उत्साह लेकर प्रथम दृश्य में ही में चंद्रगुप्त की चपलता दर्शकों की दृष्टि में उसे गिराने को होती है, तब चाणक्य का ही उत्साहवर्द्धक वात्सल्य उसकी सहायता करता है। आगे चल कर भी कार्य की सारी गति-विधि का निर्माण, निरीक्षण, संपादन, यहाँ तक कि इच्छानुकूल अंत भी चाणक्य की ही प्रेरणा और प्रयत्न से होता है। सारांश यह कि नाटक के प्रधान कार्य की सिद्धि के लिए यदि चन्द्रगुप्त की शक्ति आवश्यक थी तो चाणक्य की बुद्धि की आवश्यकता उससे किसी दृष्टि में कम नहीं है।

यह सब होते हुए भी चन्द्रगुप्त को ही नाटक का नायक स्वीकारने का प्रधान कारण यह है कि चाणक्य भी स्वयं परदे के पीछे रहकर चन्द्रगुप्त को सामने रखना चाहता है। मस्तिष्क को यदि शक्ति का सहारा न मिले तो कोरी कल्पना इस प्रत्यक्ष जगत में कुछ नहीं कर सकती। चाणक्य का मस्तिष्क चन्द्रगुप्त-सी शक्ति पाकर ही अपने प्रयत्न में सफल होता है। चाणक्य के त्याग के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त में नायकोचित सभी सात्विक गुण वर्तमान हैं और एक समय चाणक्य तथा सिंहरण के न रहने पर भी उसका उत्साह-सूर्य पूर्ण तेज से चमकता है। भयानक विपत्ति के इस अवसर पर चन्द्रगुप्त की आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास दिखाकर नाटककार संभवतः संकेत करता है कि अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति उसमें पर्याप्त है और चाणक्य के मस्तिष्क की सहायता से वंचित रहने पर भी अपने कर्म-पथ पर वह सोत्साह बढ सकता है।

<u>तत्कालीन राजनीतिक स्थिति</u>--देश में वीरता का उस समय अभाव नहीं था ; परन्तु सामूहिक समस्याओं की उपेक्षा करके व्यक्तिगत वैमनस्य में राजा-प्रजा दोनों फँसे थे और निजी मान-सम्मान का झगडा निबटाने के लिए विदेशियो को मध्यस्थ बनाना चाहते थे। 'आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसी प्रस्तुत हो रही है उत्तरा पथ के खंड राज्य द्वेष से जर्जर हैं ... दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगारे पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है।' पंचनद नरेश पर्वतेश्वर से विरोध के कारण क्षुद्र हृदय आंभीक यवनो का स्वागत करता है। यही नहीं, एक राष्ट्र की भावना पर प्रांतीयता-प्रेम ने विजय प्राप्त कर ली थी और इसलिए वीरता तथा शक्ति में श्रेष्ठता का निबटारा करने के लिए चंद्रगुप्त चाणक्य से कहता है—'हम मागध हैं और यह (सिंहरण) मालव। अच्छा होता कि यहीं गुरुकुल

में हम दोनों शक्ति की परीक्षा भी देते।'—यह प्रांतीयता-प्रेम चंद्रगुप्त में ही नहीं, गांधारराजकुमारी अलका में भी है। 'तुम्हारे देश के लिए तुम्हारा जीवन अमूल्य है,'—अपने इस कथन के उत्तर में सिंहरण के मुँह से यह सुनकर—'मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है, यही क्या समग्र आर्यावर्त है'—अलका आश्चर्य से पूछ बैठती है—'क्या कहते हो!' इस विस्मयादिबोधक वाक्य से स्पष्ट है कि यह संकुचित और हानिकारिणी भावना उस समय सारे उत्तरी भारत में फैल रही थी। संभवतः इसका कारण था बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में देश का विभाजित होना। दूसरे शब्दों में, एक सर्वमान्य और सर्वशक्तिशाली सम्राट् के अभाव में देश की राष्ट्रीयता छिन्न-भिन्न होकर प्रांतीयता में बँट गई थी और आगे चलकर यही शक्ति-विभाजन पंजाब में सिकंदर की विजय का कारण हुआ। देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति से इस प्रकार पाठक को परिचित करा देना आवश्यक था और इसलिए 'प्रसाद' जी का यह प्रयत्न प्रशंसनीय समझना चाहिए।

राजनीति और विद्यार्थी—सिंहरण और चंद्रगुप्त यद्यपि नए स्नातक ही हैं, तथापि देश की राजनीतिक स्थिति से वे अपरिचित नहीं प्रतीत होते। इससे प्रसाद जी का यह संकेत जान पड़ता है कि हमारे प्राचीन विश्वविद्यालयों में केवल पाठ्य पुस्तकों की ही पढ़ाई नहीं होती थी, राजनीति की सामयिक समस्याएँ भी विद्यार्थियों के अध्ययन का प्रिय विषय थीं और इसके लिए राजनीति और अर्थशास्त्र के शिक्षक उन्हें सदा उत्साहित करते थे।

राष्ट्रीयता की भावना—नाटक की कथा के लिए प्रसादजी ने भारतीय इतिहास का वह भाग चुना है जब हमारे देश पर विदेशियों के आक्रमण होना आरंभ हुए थे और भारत की सम्मिलित शक्ति छिन्न-भिन्न होने के कारण शत्रुओं का सामना करने में असमर्थ थी। एक ओर ये आक्रमणकारी नित्यप्रति बढ़ते हुए अपने बाहुबल,

बुद्धिबल और अर्थबल के बल पर उन्मत हो रहे थे और दूसरी ओर भारत आतरिक विद्रोह, पारस्परिक कलह और हीन स्वार्थवृत्ति के कारण सशक्त होते हुए भी पराजित हो रहा था। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार प्रायः दो रूपो में किया जाता है—एक, जातीय अभिमान और गर्वगौरव की महत्ता, स्वातंत्र्य की पुण्य भावना और पूर्वपुरुषों की वीरता के ओजमय गीत गाकर। दूसरे, पारस्परिक प्रेम और संगठन के महत्व तथा तज्जनित सुखशाति की ओर उनको आकर्षित करके। प्रसादजी के नाटको में। मुख्यत: 'स्कंदगुप्त' और, 'चंन्द्रगुप्त' में, राष्ट्रीयता के दोनों रूप मिलते हैं ; स्थिति को दोनो की आवश्यकता भी थी। इन दोनो नाटकों में, स्वाभाविकता लाने के लिए दो एक स्त्री-पुरुष-पात्रो को देशभक्त बनाना अनिवार्य था। 'स्कदगुप्त' में पर्णदत्त ,बंधुवर्मा, भीमवर्मा, जयमाला और स्कंदगुप्त सभी स्वतंत्रता के पुजारी हैं , उसकी रक्षा के लिए हँसते-हँसते मर-मिटने को, देशप्रेम की बलिवेदी पर चढ़ जाने को, तैयार हैं। 'चन्द्रगुप्त' में सिंहरण, अलका, चद्रगुप्त, चाणक्य इत्यादि के हृदयों में देशभक्ति का अपूर्व स्रोत प्रवाहित हो रहा है।

भारतीय अभिमान और गर्वगौरव की राष्ट्रीय भावना चंद्रगुप्त और सिंहरण में विशेष प्रबल है और विदेशियों से प्रत्येक सपर्क में वे इसका सुन्दर परिचय देते हैं। सिल्यूकस से चन्द्रगुप्त का प्रथम परिचय काननपथ में होता है। यवन सेनापति इसे मगध का निर्वासित राजकुमार समझ 'कुछ विचारकर' अपने शिविर मे चलने का निमत्रण देता है, तब चन्द्रगुप्त का उत्तर है—'धन्यवाद, भारतीय कृतघ्न नहीं होते। सेनापति ! मै आपका अनुगृहीत हूँ, अवश्य आपके पास आऊँगा।' दाड्यायन के आश्रम में चद्रगुप्त के तेज से प्रभावित होकर सिकंदर पुनः उसे 'अपने शिविर में निमंत्रित करता है।' और चंद्रगुप्त निर्भयता के स्वर में स्वीकारता है—'अनुगृहीत हुआ। आर्य लोग किसी निमंत्रण

को अस्वीकार नहीं करते।

यवनों से युद्ध में पौरव पर्वतेश्वर भी उन्हे यही बतलाना चाहता है कि 'भारतीय लड़ना जानते हैं।' मालवदुर्ग के युद्ध मे यवन सम्राट को घायल करके भी सिंहरण छोड़ देता और मालव सैनिको के विरोध करने पर समझाता है—'ठहरो मालववीरों, ठहरो! यह भी एक प्रतिशोध है। यह भारत के ऊपर एक ऋण था, पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है।' दूसरी ओर चंद्रगुप्त भी यवन सेनापति सिल्यूकस को घेर कर पुनः यह कह कर—'जाओ सेनापति, मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है—तुम्हारा जीवन।'—छोड़ देता है। यवन-सम्राट को भारत से विदा करते समय चाणक्य कहता है—'तुम वीर हो सिकदर! भारतीय सदैव उत्तम गुणों की पूजा करते हैं। तुम्हारी जल-यात्रा मगलमय हो। हम लोग युद्ध करना जानते हैं, द्वेष नहीं।'

द्वितीय यवनाक्रमण में चद्रगुप्त सिल्यूकस का स्वागत जिन शब्दों से करता है, उनसे भी भारतीयता की भावना स्पष्ट होती है—'स्वागत सिल्यूकस। अतिथि की-सी तुम्हारी अभ्यर्थना करने मे हम विशेष सुखी होते, परतु क्षात्रधर्म बड़ा कठोर है। आर्य कृतघ्न नहीं होते, प्रमाण यही है कि मै अनुरोध करता हूँ कि यवनसेना बिना युद्ध के लौट जाय।' यवन सेना को पराजित करने के पश्चात भी सिल्यूकस को बदी न बना कर चद्रगुप्त कहता है—'यवन सम्राट! आर्य कृतघ्न नहीं होते। आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना ही मेरा कर्तव्य था। सिंधु के इस पार अपने सेना-निवेश में हैं आप, मेरे बदी नहीं। मै जाता हूँ।' और भारतीय कृतज्ञता का यह अद्भुत उदाहरण देखकर यवनसम्राट सिल्यूकस के मुख से स्वत निकल जाता है—'इतनी महत्ता!'

चाणक्य और अलका, दोनों राष्ट्रीय भावना का प्रचार करके संगठन का दूसरा कार्य करते हैं। चाणक्य मगधनरेश नद को यवनों

का सामना करने को प्रस्तुत पर्वतेश्वर की सहायता करने की सम्मति देता है और समझाता है कि यवनाक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मणों का भेद न रखेंगे। आगे चल कर यवनसम्राट सिकंदर के सहायक देशद्रोही आभीक को सचेत करता है—'तुम्हारी भूल ने कितना कुत्सित दृश्य दिखाया, इसे सभवतः तुम न भूले होगे।' और आभीक जब अपनी भूल स्वीकारता है तब चाणक्य ने समझाया—'चद्रगुप्त का सामाज्य मगध का नही है, यह आर्यसामाज्य है। उत्तरापथ के सब प्रमुख गणतत्र मालव, क्षुद्रक, यौधेय आदि सिंहरण के नेतृत्व मे इस साम्राज्य के अंग हैं। केवल तुम्हीं अलग हो।' और आभीक सहमत होकर स्वीकारता है—'व्यर्थ का अभिमान अब मुझे देश के कल्याण में बाधक न सिद्ध कर सकेगा। * * * मैं केवल एक बार यवनो के सम्मुख अपना कलक धोने का अवसर चाहता हूँ।' इसी प्रकार चाणक्य ने मालव की युद्धपरिषद् के सदस्यों में भी भारतीयता की भावना एक व्याख्यान देकर जाग्रत की है और सगठन का अपेक्षित महत्व बतलाया है।

अलका प्रथम यवनाक्रमण के अवसर पर सिंहरण से प्रतिज्ञा करती है—'मैं भी आर्यावर्त की बालिका हूँ। * * *। मैं आभीक के पतन को शक्ति भर रोकूँगी।' पिता गांधारनरेश के सामने उत्तेजित स्वर में उसने कहा है—'कुलपुत्रों के रक्त से आर्यावर्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बन कर जननी जन्मभूमि अपनी सतान को खायगी। महाराज! आर्यावर्त के सब बच्चे आभीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मानप्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जायँगे। स्मरण रहे, यवनों को विजयवाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्तन बनाने वाले यही भारत-संतान होंगे। तब बचे हुए क्षातागवीर गाधार को, भारत के द्वार रक्षक को, विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उसमें नाम लिया जायगा मेरे पिता का! आह! उसे सुनने के लिए मुझे जीवित न

छोड़िए, दंड दीजिए—मृत्युदंड।'

इतने ओजस्वी शब्द भी देशद्रोहियों को प्रभावित करने में असफल देख 'आर्यावर्त की राजलक्ष्मी' अलका समस्त गांधार में विद्रोह मचाती फिरती है। द्वितीय यवनाक्रमण के समय भी उसका यही जीवनोद्देश्य है। अपने देशवासियों को सम्बोधित कर उसने कहा है—'तक्षशिला के वीर नागरिकों! एक बार, अभी-अभी सम्राट चंद्रगुप्त ने इसका उद्धार किया था। आर्यावर्त—प्यारा देश—ग्रीकों की विजयलालसा से पुनः पददलित होने जा रहा है, तब तुम्हारा शासक तटस्थ रहने का ढोंग करके पुण्यभूमि को परतन्त्रता की शृंखला पहनाने का दृश्य राजमहल के झरोखों से देखेगा। तुम्हारा राजा कायर है और तुम ?'—अपने प्रश्न का अलका को वीर नागरिकों से अभीष्ट उत्तर ही मिलता है—'माँ! हम लोग प्रस्तुत हैं।' परंतु इससे महत्तर सफलता उसे तब मिलती है जब अलका को 'हिमाद्रि तुंग शृङ्ग से' वाला गीत गाते सुनकर देशद्रोही आम्भीक चाणक्य से प्रतिश्रुत होता है और अलका से स्वच्छ और निष्कपट हृदय से वीरोचित स्वर में कहता है—'बहन! तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। * * * मैं देशद्रोही हूँ! नीच हूँ! अधम हूँ! तूने गांधार के राजवंश का मुख उज्ज्वल किया है।'

प्रसाद जी के इस नाटक की एक विशेषता यह है कि इसके विदेशी पात्र भी भारतीय महत्व स्वीकार करने में अपना गौरव समझते हैं। विश्वविजय का स्वप्न देखने वाला सिकंदर चंद्रगुप्त के सामने अपनी असफलता के पहले कहता है—'भारत आज तक कभी विजित नहीं हुआ।' और विदा होते समय उसके गद्‌गद् कंठ से निकले हुए उद्‌गार ये हैं—'आर्यवीर! मैंने भारत में हरक्यूलिस, एचिलिस की आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को। संभवतः प्लेटो और अरस्तू भी होंगे। मैं भारत का अभिनंदन करता हूँ। * * * मैं

तलवार खींचे हुए भारत में आया, हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय विमुग्ध हूँ !' यवन सेनापति सिल्यूकस भी समय-समय पर भारतीय वीरों की प्रशसा करता है और उसकी पुत्री कार्नेलिया तो भारतीय रंग-ढग मे इस तरह रँगी हुई हैं कि यदि उसका नाम और परिचय ज्ञात न हो तो उसके कथन और उद्गार सुन कर कोई भी उसे यवन-बालिका नहीं मान सकता। आज से लगभग चौबीस सौ वर्ष पहले जिन विदेशियों ने भारत पर प्रथम आक्रमण करने का साहस किया था, उन्हीं के सम्राट तथा अनुयायियों का इस प्रकार भारतीय गरिमा और महिमा का सहज स्वाभाविक स्वर से गान करते करते गदगद हो जाना निश्चय ही नाटककार के अभिनंदनीय राष्ट्रीयता-प्रेम का परिचायक है।

'स्वगत' का प्रयोग :—रगमच पर कुछ वर्ष पहले, जो नाटक खेले जाते थे, 'स्वगत' कहे गए अशों की उनमें भरमार रहती थी। मंच के पात्र ऐसे अंशों को मूल से भिन्न स्वर में पाठकों को सुनाते-समझाते थे। आलोचकों ने अभिनय की दृष्टि से इन अंशों को अस्वाभाविक माना। उनका तर्क यह है कि जिन 'स्वगत' अंशों को पात्र-पात्री केवल दर्शकों को ही सुनाने के लिए उच्च स्वर में कहते हैं, यह कैसे सम्भव है कि उनको उन्ही के पास खड़े अन्य पात्र न सुनें और उन पर कोई प्रभाव न पड़े। अतः 'स्वगत' अशों को निर्लिप्त भाव से सुनकर अभिनय करते रहना अनुचित ठहराया गया। अपने नाटको को दोपरहित बनाने के लोभ से नाटककारों ने धीरे-धीरे ऐसे अंशों को कम करना आरम्भ किया। इधर के नाटकों में इनका प्रायः अभाव ही दिखाई देता है।

'स्वगत' अशो को देने से लेखक का उद्देश्य पाठकों को अपने पात्र-पात्रियों के सच्चे विचारो से परिचित कराना होता है। मन, वचन और कर्म मे एकता रखने वाले व्यक्ति समाज में कदाचित्

एक प्रतिशत भी नहीं मिलेंगे। शेष निन्नानवे व्यक्तियों के मन में कुछ होगा, कहेंगे कुछ और करेंगे कुछ और। ऐसी दशा में व्यक्ति को ठीक ठीक समझना सरल काम नहीं है। कर्म और वचन बाहरी चाल चलन की बातें हैं। सामाजिक शिष्टाचार का पूरा-पूरा ध्यान रख कर ही हमें अपने मुख से वचन निकालने या काम करने पड़ते हैं। इसलिए यदि वचन और कर्म में एकता भी हो तो उसे प्रायः सामाजिक शिष्टाचार का ही फल समझना चाहिए।

परन्तु मन में जब हम बात करते हैं तब विचारधारा पर सामाजिक बातों का प्रभाव नहीं पडता। समाज में रहते हुए भी मन में विचरण करते समय हम प्रायः स्वतत्र रहते हैं। अतः मनुष्य को ठीक-ठीक तभी समझा जा सकता है जब उसके वचनों और कर्मों को शिष्टाचारी आवरण से मुक्त करके समझने की योग्यता हममें हो तथा हम यह विवेचना कर सकें कि इनमें कितना अश शिष्टाचार का फल है और कितना हृदय के सच्चे भावों और अतःकरण की सच्ची प्रवृत्तियों का। यह विवेचन-कार्य विशेष अध्ययन और अनुभव चाहता है। कदाचित इसीलिए नाटकों में 'स्वगत' कथन द्वारा मन के सीधे-सादे भाव इस प्रकार व्यक्त कर दिए जाते थे कि उनसे व्यक्ति को भली-भाँति समझा जा सके। इसमें सदेह नहीं कि मूलतः यह उद्देश्य उचित और साहित्योपयोगी ही था।

आज के नाटकों को अभिनय-कला की दृष्टि से स्वाभाविक बनाने के लिए आलोचकों ने जब उक्त दोष के कारण 'स्वगत' भाग को अनुचित ठहराया, तब वे भी उसकी उपयोगिता नहीं भूले थे। उनका उद्देश्य यह था कि जिन मानसिक विचारों को 'स्वगत' के अतर्गत देकर हम पात्र-पात्रियों के चरित्र का परिचय देते हैं, उन्हीं के प्रभाव-स्वरूप उनकी भावभगी, शारीरिक चेष्टा और कार्यों को दिखा कर सकेतरूप में काम निकाला जाय तो यह ढग अत्यन्त रोचक, कलापूर्ण

और साहित्योचित होगा। साहित्य का उद्देश्य मानसिक विकास करना भी है। 'स्वगत' का इस नए रूप में प्रयोग करने से साहित्य के इस उद्देश्य को पूर्ण करने में नाटक सहायक हो सकेंगे और निस्संदेह पाठकों के हाव-भाव, कार्य-कलाप आदि का विश्लेषण करके व्यक्ति को समझाने का प्रयत्न अत्यन्त रोचक और मानसिक विकास का सहायक सिद्ध होगा। हर्ष है कि आधुनिक नाटककारो ने इस बात को समझा और तदनुसार रचना करना आरम्भ किया है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह केवल ऐसे 'स्वगत' अंशों के लिए है जो मंच पर आए पात्रों के सामने रहने पर कुछ ऐसे वाक्य कहते हैं जिनसे उनके हार्दिक विचार तो प्रकट होते हैं, परन्तु जिन्हे वे निकट खड़े हुए पात्रों से नहीं कहते और न चाहते ही हैं कि वे उसे सुन-समझ ले। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में ऐसे स्थल थोड़े ही है ; केवल अलका और मालविका ने क्रमशः पर्वतेश्वर और चाणक्य से बातचीत करते समय दो-एक वाक्य कहे हैं। प्रयत्न करने पर अधिक कलापूर्ण ढंग से इनसे छुटकारा मिल सकता था।

एक प्रकार के 'स्वगत' और हैं जो हमें प्रायः प्रत्येक दृश्य के आदि और अन्त में मिलते हैं। ऐसे अंश उन अवसरों पर कहे गए हैं जब मंच पर दूसरा पात्र नहीं होता और इसलिए इन्हें अस्वाभाविक नहीं कह सकते ; दूसरे, पात्र-पात्रियों की विचारधारा का इनसे परिचय मिलता हैं। इस प्रकार के 'स्वगत' प्रस्तुत नाटक में कहीं कहीं बहुत लम्बे हो गए हैं और कुछ में तो एक ही बात दोहराई गई है। दार्शनिक विचारधारा के फलस्वरूप, और कभी-कभी भावपूर्ण गद्य-काव्य की दृष्टि से, इन 'स्वगत' भाषणों का जो भी मूल्य हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अभिनय के विचार से ऐसे लम्बे स्थल दर्शको को उबा देने वाले होते हैं।

रस—भारतीय नाटक-रचना-प्रणाली में सब से प्रधान तत्व रस

माना गया है । अन्य तत्वों की सार्थकता यही है कि रस की पूर्ण निष्पति में सहायक हो। विरोध, सघर्ष और युद्धप्रधान नाटक में केवल वीर रस की प्रधानता हो सकती है और यही चद्रगुप्त का प्रधान रस माना जा सकता है।

गीत—काव्यानद को ब्रह्मानद सहोदर मनाने वाले भारतीयो की सभी कला-कृतियों मे काव्य का सुन्दर समावेश रहना स्वाभाविक ही समझा जाना चाहिए। नृत्य और सगीत में उन्नति भी हमने इतनी करली थी कि मनोरजन के प्रधान साधनों से उनका निकटतम सबंध आवश्यक एव वाछनीय था। अनुकरण द्वारा जनरजन के उद्देश्य से नाटक रचने एव खेलने को जब भारतीय साहित्यकार प्रवृत्त हुए तब काव्य-रुचि की अधिकता एव सगीत-कला प्रेम ने उनमें गीतों का समावेश कर दिया। यही कारण है कि सभी प्राचीन नाटकों में सुन्दर कविता के दर्शन होते हैं। आगे चल कर यह प्रवृत्ति इतनी बढी कि नाटकीय कथोपकथन का अधिकाश पद्य में रहने लगा। इस वर्ग के कुछ कवियों ने तो पूरे नाटक कविता में लिख डाले है।

हिन्दी-नाटक-रचना मे प्रवृत्त होने वाले साहित्य-सेवियों ने सस्कृत-परिपाटी की देखा-देखी आरम्भ से ही अपनी कृतियो को कविता से लाद रखा था। इसी समय बँगला और अँगरेजी नाटकों से हमारा परिचय होता है। पाश्चात्य देशो की भी आदि नाट्य रचनाओ में कविता का यथेष्ट प्रभाव रहा, परन्तु मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता का आदर्श सामने रख कर ज्यों-ज्यो उनका समालोचना-साहित्य उन्नति करता गया, नाटक से कविता का बहिष्कार करने वालों की आवाज त्यों-त्यों ऊँची होती गई। वस्तुतः नाटकीय पात्रों का पद्य में बातचीत करना, अथवा बीच-बीच में कविता पढ़ने लगना है भी अस्वाभाविक और अनुपयुक्त। पाश्चात्य आलोचकों का यही प्रधान तर्क था।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र से लेकर जयशकर प्रसाद के प्रादुर्भाव तक

जितने नाटक हिन्दी में रचे गए सबमें जब-तब गीत गाए गए हैं। बँगला और अँगरेजी नाटककारों की कविता के प्रति इस प्रकार रुचि का अभाव देख कर हिन्दी के आलोचकों ने इस प्रवृत्ति का विरोध आरम्भ किया। नाटककार भी धीरे धीरे स्वाभाविकता का महत्व समझने लगे। हिन्दी के प्रारंभिक नाटककारो की कृतियो से आज के सेवियो की रचनाओं का इसी दृष्टि मे मिलान करने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी।

'प्रसादजी' की आरंभिक रचनाओं मे कविताओं की सख्या अधिक थी। स्वयम् कुशल कवि होने के कारण काव्य का पूर्णतः बहिष्कार करना तो उनके लिए सभव था नहीं, केवल अनावश्यक स्थलों पर ही उन्होंने उनका प्रयोग रोक दिया। दूसरी बात उन्होंने इस सबध में यह की कि रचना में प्रयुक्त गीतों को स्थिति अथवा पात्र की दृष्टि से स्वाभाविक बना दिया। उनके प्रायः सभी नाटकों में दर्शन, कविता अथवा संगीत-प्रेमी दो-एक पात्र-पात्रियाँ अवश्य हैं जो अपने गीतों के लिए आवश्यक वातावरण की सृष्टि करके उन्हें स्वाभाविक बना लेती हैं।

प्रस्तुत नाटक में कुल तेरह गीत हैं जिनमे ग्यारह स्त्रियो ने गाए हैं, एक पुरुष ने और एक नेपथ्य से सुनाया गया है। अंकों में इन गीतों का विभाजन इस प्रकार है—

संख्या	अक	गायिका	विशेष
१.	प्रथम	सुवासिनी	मगधसम्राट के विलास-कानन में गाये गए हैं।
२.	प्रथम	राक्षस	
३.	द्वितीय	कार्नेलिया	एकात में भारतीय सगीत।
४.	द्वितीय	अलका	एकात वंदीगृह में।
५.	द्वितीय	अलका	पर्वतेश्वर के सामने।

६.	तृतीय	सुवासिनी	नदकी आज्ञा से
७.	चतुर्थ	कल्याणी	एकात उपवन में
८.	चतुर्थ	(नेपथ्य से)	प्रेमोत्तेजक छोटा गीत
९.	चतुर्थ	मालविका	'स्वर में स्वर्गीय मधुरिमा'
१०	चतुर्थ	मालविका	लिए चद्रगुप्त की आज्ञा से।
११.	चतुर्थ	मालविका	एकात में ेम-व्यंजना
१२.	चतुर्थ	अलका	समवेत स्वर में गायन
१३	चतुर्थ	सुवासिनी	कार्नेलिया की प्रेरणा से

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुख्यतः ये गीत सुवासिनी, अलका और मालविका ने गाए हैं। प्रथम तीन अकों में गीतों की सख्या कम होने का प्रधान कारण यही है कि एक अक में प्रायः एक ही पात्री अभिनय की दृष्टि से प्रधानता पा सकी है। चतुर्थ अ क में तीनों पात्रियाँ सम्मिलित रूप से काम कर रही हैं और मालविका तो एक ही दृश्य में तीन गीत गाकर अापने अस्तित्व की विशिष्टता का परिचय देती है। इनके अतिरिक्त जीवन में पहली और अतिम बार कल्याणी एक गीत गाती है और नेपथ्य से भी एक गीत सुनाई देता है। इसी से इस अक में गीतों की सख्या सात—अर्थात् आधे से अधिक–तक पहुँच जाती है। स्थिति की स्वाभाविकता की दृष्टि से तेरहों गीत निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं— .

१. नर्तकियों के गीत—छह। प्रस्तुत नाटक में नर्तकियाँ यद्यपि एकबार भी नहीं आतो , परन्तु सुवासिनी, राक्षस और मालविका (इसके प्रथम दो गीत) के जो गीत विलासकानन में अथवा अन्यत्र नद, चन्द्रगुप्त या कार्नेलिया की आज्ञा से उनके मनोरजन के लिए गाए गए हैं वे इसी वर्ग में आते हैं। दूसरों की प्रेरणा से गाए जाने के कारण इन गीतों की स्वाभाविकता का प्रश्न ही नहीं उठता।

२. एकात गीत—चार। ऐसे गीत विशेष मानसिक स्थिति या भावावेश में हृदय के उद्‌गार व्यक्त करने को गाए जाते है। इनकी गायिकाएँ हैं कार्नेलिया, अलका, कल्याणी और मालविका।

३. नेपथ्य से—एक। ऐसे गीत विषय के अनुकूल मनोभावो के उत्तेजक होने चाहिएँ। राक्षस के मन में सहसा शंका उठती है कि सुवासिनी की उपेक्षा का कारण कहीं चाणक्य के प्रति उसका आकर्षण तो नहीं है और तभी नेपथ्य से कोई 'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला' शीर्षक गीत गाकर उसकी शंका की मानों पुष्टि कर देता है।

४. समवेत स्वर में—एक। आभीक के हृदय में सोती हुई राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजित करने के लिए चाणक्य के सकेत से यह गीत अलका ने गाया हैं।

५. शेष—एक। पचनद-प्रासाद में पर्वतेश्वर के सामने विचित्र ढंग से अलका एक गीत गाती है जो मिलता-जुलता तो एकात गीतों से है परन्तु नर्तकियों के गीत की तरह पर्वतेश्वर को उत्तेजित कर देता है।

विषय की दृष्टि से अलका का 'हिमाद्रि तुंग शृङ्ग से' और कार्नेलिया का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' से आरम्भ होने वाले दो गीतों को छोड कर शेष प्रेम, वेदना, सौंदर्यासक्ति, आदि मनोभावों और अन्तर्वृत्तियों की व्यजना करने वाले हैं। ये सब गीत छोटे, भावपूर्ण और बहुत सुन्दर हैं। कहा-कहीं आध्यात्मिकता की पुट और भावों की कोमलता ने इन्हे विशेष लोकप्रिय बना दिया है।

<u>शैली</u>—प्रसादजी पहले कवि हैं, पीछे कुछ और। यही कारण है कि उनकी समस्त कृतियों में काव्यात्मक चमत्कार वर्तमान है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए बड़ी सुन्दर उक्तियों का संग्रह करते वे दिखाई देते हैं। ऐसा करने से वर्णन में एक विशेष प्रकार की रोचकता आ जाती है। उदाहरण के लिए एक अवतरण देखिए—

प्रणय वञ्चिता स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े-विघ्नों को दूर करने के लिए वज्र से भी दृढ होती हैं। हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हृतसर्वस्वा रमणी पहाडी नदियों से भयानक, ज्वालामुखी के विस्फोट से भी बीभत्स और प्रलय की अनलशिखा से भी लहरदार होती है।

यह चमत्कार प्रसादजी की रचनाओं में प्रायः सर्वत्र मिलता है, छोटी-छोटी कहानियों में भी एक आध स्थल पर ऐसे वाक्य देखने को मिलते हैं, फिर नाटको का तो कहना ही क्या। वास्तव में जहाँ लेखक स्वय ही पाठको का दुख-सुख अपना लेता है वहीं अपनी भावुकता से ऐसी उक्तियाँ सोच सकता है। इन उक्तियों में साम्य और चमत्कार तो होता ही है, साथ ही, एक प्रवाह भी रहता है। इसका सबध पात्र के हृदय में उत्पन्न दुख, क्षोभ, ग्लानि, हर्ष आदि मनोभावों की मात्रा के अनुरूप होता है। ज्यो-ज्यों अ तस्थल की सूक्ष्म भावनाएँ आवेश, क्रोध आदि में परिणत होती जाती हैं त्यो त्यो प्रसादजी कुशलतापूर्वक उनका चित्र खींचते चलते हैं। ऐसे स्थलो पर भाव-प्रकाशन-शैली बहुत ही स्वाभाविक है, वाक्य छोटे छोटे हैं, भाषा में सहज प्रवाह भी है। प्राय. अ तर्द्वद्व-प्रधान नाटकों में ऐसे स्थल बहुत अधिक रहते है। अतः भावात्मक शैली के उदाहरण भी बहुत मिलते हैं।

१. माँ, मुझे अत्याचार का प्रतिशोध लेने दो। मै पिता के पास जाऊँगा। मुझे आज्ञा दो। मै मनसा के हाथों का विपाक्त अस्त्र बन उसकी भीषण कामना का पुरोहित बनूँ। क्रूरता का ताडव किए बिना मै न जी सकूँगा। मैं आत्मघात कर लूँगा।

२ सेनापति! देखो, उन कायरो को रोको। उनसे कहदो कि रणभूमि मे पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिंता नहीं, एक बार इन दस्युओ को बतला देना होगा कि भारतीय लडना भी जानते है। बादलों से पानी बरसने की जगह वज्र बरसें, सारी गज-सेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथी हों, रक्त के नाले धमनियों से

नहीं, परंतु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिये असंभव है। धर्म-युद्ध में प्राण-भिक्षा माँगने वाले भिखारी हम नहीं। जाओ, उन भगोड़ों से एक बार जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर रुकने को कहो। कहो कि मरने का क्षण एक ही है, जाओ।

ऊपर की पंक्तियों का भावावेश स्पष्ट ही है। दूसरे अवतरण में रणभूमि में मर मिटने को ही जीवन का उद्देश्य समझने वाले भारतीय वीर पर्वतेश्वर के वीरतापूर्ण भावोद्गारों का बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन किया गया है। भाषा का धारावाहिक रूप और छोटे छोटे वाक्य, इस शैली की विशेषताएँ हैं। निम्नलिखित अवतरण मे भी वाक्यो की गठन और धारा का सुन्दर प्रवाह देखते ही बनता है--

(आप ही आप) बुलाओ, बुलाओ, उस वसत को, उस जंगली वसंत को, जो महलों मे मन को उदास कर देता है, जो मन मे फूलो के महल बना देता है, जो सूखे हृदय की धूलि में मकरद सींचता है। उसे अपने हृदय में बुलाओ, जो पतझड बन कर नई कोपल लाता है, जो हमारे कई जन्मों की मादकता में उत्तेजित होकर इस भ्रांत जगत मे वास्तविक बात का स्मरण करा देता है, जो कोकिल की तरह सस्नेह रुक-रुक कर आवाहन करता है, जिसमें विश्व भर के सम्मिलन को उल्लास स्वतः उत्पन्न होता है। एक आकर्षण सबको कलेजे से लगाना चाहता है। उस वसत को, उस गई हुई निधि को लौटा लो। काँटों में फूल खिलें, विकास हो, प्रकाश हो, सौरभ खेल खेलें। विश्वमात्र एक कुसुम-स्तवक के सदृश किसी निष्काम के करो में अर्पित हो। आनंद का रसीला राग विस्मृति को भुला दे; सबमें समता की ध्वनि गूँज उठे। विश्व भर का क्रदन कोकिल की काकली में परिणत हो जाय। आम के बौरों मे से मकरद-मदिरा पान करके आया हुआ पवन सबके तप्त अङ्गों को शीतल करे।

लेखक की रुचि का उसकी शैली पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

प्रसादजी के विषय में भी यह बात पूर्ण सत्य है। दार्शनिक, आध्यात्मिक, आदि विषयों से उन्हें रुचि थी। अत. उनकी शैली प्रधानत इन विषयों के अनुकूल हुई हैं। इसी प्रकार प्रसादजी के नाटको मे हम देश-प्रेम की पवित्र भावना अधिक देखते हैं। इसका एक कारण उस समय की ऐतिहासिक परिस्थिति है जिस समय के कथानको को उन्होने अपनाया था। भारत पर तब विदेशियों के आक्रमण हो रहे थे। ये आक्रमणकारी भारतयि प्रजा पर अमानुषीय-अत्याचार करते थे। अतः देश-प्रेमियो की सृष्टि करना नाटककार के लिए स्वाभाविक ही था। दूसरी बात यह है कि ऐसे देशोद्धारक या समाजसुधारक प्रायः कर्मवीर होते है, और कर्म की महत्ता का प्रचार भी करते है। यही बात कमला के इन शब्दो से स्पष्ट होती है---

कौन कहता है तुम अकेले हो! समग्र ससार तुम्हारे साथ हैं। स्वानुभूति को जाग्रत करो! यदि भविष्यत् से डरते हो कि तुम्हारा पतन समीप ही है, तो तुम उस अनिवार्य स्रोत से लड जाओ। तुम्हारे प्रचड और विश्वासपूर्ण पदाघात से विध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न-स्रोत का लौटा देगा। राम और कृष्ण के समान क्या तुम भी अवतार नहीं हो सकते? समझ लो, जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझ कर करता है, वही ईश्वर का अवतार है। उसमें पुरुषार्थ का समुद्र पूर्ण हो जाता है। उठो, स्कद! आसुरी वृत्तियो का नाश करो, सोने वालों को जगाओ और रोने वालो को हँसाओ! आर्यावर्त्त तुम्हारे साथ होगा और उस आर्य-पताका के नीचे समग्र विश्व होगा। उठो वीर।

इस अवतरण में हमे उनकी ओजपूर्ण शैली के दर्शन होते हैं जिसमें बडा सुन्दर प्रवाह है और वाक्य भी छोटे-छोटे है। परिस्थिति के अनुकूल ऐसी शैली बना लेना वास्तव में, लेखक की कुशलता का द्योतक है।

शब्दों के द्वारा चित्र अङ्कित करने की शक्ति भी प्रसादजी मे अद्भुत थी। दृश्यो की सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखाओं को पाठक देख सकते हैं। उन चित्रो के रग इतने पारदर्शक होते हैं कि उस व्यक्ति के हृदय को भी हम स्पष्ट देख सकते है। एक उदाहरण—

घटी के कपोलों में हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे। भोली-मतवाली आँखे गोपियों के छायाचित्र उतारता, और उभरती हुई वयःसधि से उसकी चचलता सदैव छेड़छाड़ करती रहती। वह एक क्षण के लिए भी स्थिर न रहती—कभी अँगड़ाई लेती तो कभी उँगलियाँ चटकाती। आँखें लज्जा का अभिनय करके पलको की आड़ में छिप जातीं, तब भी भौहे चला करतीं। तिस पर भी घटी एक बाल-विधवा है।

कहीं-कहीं प्रसादजी की रचनाओं में सुंदर व्यग्य भी मिलता है जो विशेष चुटीला और मार्मिक न होकर सरल और मीठा हैं। एक अवतरण देखिए—

मुकुल—महोदय, आपका यह हल्के जोगिया रंग का कुरता जैसे आपके सुंदर शरीर से अभिन्न होकर हम लोगों की आँखों में भ्रम कर देता है वैसे ही आपको दुख के झलमले अंचल मे खिसकते हुए संसार की पीड़ा का अनुभव स्पष्ट नहीं हो पाता। आपको क्या मालूम कि बुद्धू के घर की काली कलूटी हाँडी भी कई दिन से उपवास कर रही है। छुन्नू मूँगफली वाले का एक रुपये की पूँजी का खोंमचा लड़को ने उछल-कूदकर गिरा दिया और लूटकर खा भी गए। उसके घर पर सात दिन की उपवासी रुग्ण बालिका मुनक्के की आशा में पलकें पसारे बैठी होगी या खाट पर पडी होगी।

प्रसादजी की भाषा में मुहावरों का प्रयोग कम है। कारण, मुहावरों का प्रयोग प्रायः उर्दू में लिखने वाले लेखकों ने ही अधिकाश में किया है—दो-एक लेखक इसके अपवाद भी हैं। प्रसादजी को उर्दू की चुलबुलाहट पसद ही नहीं थी। परन्तु मुहावरों के अभाव से भाषा मे

जो शुष्कता, या लचरपन आ जाता है वह उनकी रचनाओं में नहीं मिलता। अतः उन्हें मुहावरों या कहावतों के झंझट में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई।

भाषा—आरंभ में प्रसादजी की रचनाओं की भाषा प्रायः सरल थी, परंतु ज्यों-ज्यों उनका अध्ययन बढ़ता गया त्यों-त्यों उनकी भाषा भी क्लिष्ट होती गई। वास्तव में मनोभावों की स्पष्टता और गंभीर विषयों की विवेचना का प्रयत्न जब किया जाता है तब भाषा क्लिष्ट हो ही जाती है। यही कारण है कि प्रसादजी की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है और अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। इसके विपरीत, जहाँ लेखक ने साधारण भाव-प्रभाव के अनुकूल भाषा लिखी है, वहाँ संस्कृत की तत्समता अधिक नहीं है। अस्तु, संक्षेप में, प्रसादजी की भाषा मुख्यतः दो प्रकार की है—

१. संस्कृत प्रधान—इस प्रकार की भाषा विशेष स्थलों पर ही मिलती है जहाँ मनोभावों का द्वंद्व चित्रित करते-करते लेखक स्वयं भावमय हो जाता है। तल्लीनता की इस अवस्था में प्रसादजी की भाषा तत्सम-शब्दावली से युक्त है। इस प्रकार की भाषा के दो-एक उदाहरण यहाँ 'चन्द्रगुप्त' से उद्धृत किए जाते है—

(क) आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारणा की लेखनी और मसी प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खंडराज्य द्वेष से जर्जर है। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।

(ख) एक अग्निमय गंधक का स्रोत आर्यावर्त के लौह अस्त्रागार में घुस कर विस्फोट करेगा। चंचला रणलक्ष्मी इंद्रधनुष-सी विजयमाला हाथ में लिए उस सुन्दर नील लोहित प्रलय जलद में विचरण करेगी और वीर हृदय मयूर-से नाचेंगे।

'चंद्रगुप्त' नाटक में ऐसी भाषा के स्थल कम हैं, परन्तु 'स्कंदगुप्त' में इनकी भरमार है।

२. व्यावहारिक भाषा—जिसमें अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का अभाव तो अवश्य है, परंतु संस्कृत की प्रधानता अखरती नहीं। इस भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों के कारण बड़ा प्रवाह और रस है। इसका प्रयोग उनके पात्रों ने या तो भावावेश में किया है या प्रसादजी ने स्वयं सरस स्थलों पर। उदाहरण के लिए देखिए—

परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिंब, तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक! मेरी कुटी में स्थान नहो, जाओ, कहीं दूसरा आश्रम खोज लो।

'गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ इतना।' कहते-कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रम्हाड घूमने लगा। स्त्री ने सोंचा, यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई—वह सोचने लगी—'सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।' घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

ममता ने मन में कहा—यहाँ कौन दुर्ग है। यह झोपड़ी न, जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्त्तव्य करना पड़ेगा। वह बाहर चली आई और मुगल से बोली—'जाओ भीतर थके हुए पथिक! तुम चाहे कोई हो, मै तुम्हें आश्रय देती हूँ। मै ब्राह्मण कुमारो हूँ; सब अपना धर्म छोड़ दें तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ!' मुगल ने चद्रमा के मद प्रकाश में वह महिमामय मुखमडल देखा, उसने मन ही मन नमस्कार किया।—'ममता' शीर्षक कहानी

यह अवतरण दूसरे प्रकार की भाषा का उदाहरण है। इसमें उर्दू के शब्दों का प्रयोग तो नहीं है फिर भी भाषा सरल और प्रचलित ही है। चंद्रगुप्त की भाषा भी इसीसे मिलती-जुलती है। प्रसादजी की

भाषा पर जब बार-बार क्लिष्टता का दोषारोपण किया गया, तब वे कुछ सरल भाषा लिखने लगे। प्रारंभिक कहानियों और नाटकों की तथा 'कंकाल' उपन्यास की भाषा का अंतर हमारे इस कथन की पुष्टि करता है—'तितली' को भाषा तो और भी व्यावहारिक और सरल है। इसी प्रकार 'स्कंदगुप्त' की भाषा की क्लिष्टता 'अजातशत्रु' और 'चंद्रगुप्त' में नहीं पाई जाती।

खटकने वाली दो बातें—पात्र-पात्रियों को संकट की विकट स्थिति में डाल कर दर्शक की उत्सुकता बढ़ाना नाटकीय कुशलता का एक अंग है, परंतु इस संकट से पात्रों की रक्षा करते समय ध्यान रखने की बात यह है कि जिन उपायों का सहारा नाटककार ले वे स्वाभाविकता-सरलता का विरोध करने वाले और बनावटी न हों; ऐसा न जान पड़े कि लेखक ने जबरदस्ती किसी पात्र को यहाँ भेज दिया। प्रस्तुत नाटक में कई बार ऐसे स्थल आए हैं कि विपत्ति का आभास होते ही संकटापन्न व्यक्ति की रक्षा करनेवाला पात्र उचित अवसर पर इतनी शीघ्रता से पहुँच जाता है जैसे वह परदे की पीछे खड़ा देख रहा था कि कब उस पर संकट पड़े और कब मै दौड़ूँ। प्रथम अंक, चौथे दृश्य में नंद का अहेरी चीता पिंजरे से निकल भागता है। मंच पर कल्याणी और उसकी सखियाँ उसे अभी देख भी नहीं पातीं कि एक तीर मार कर धनुष हाथ में लिए चंद्रगुप्त प्रवेश करता है जैसे एहसान जताने आ गया हो। इसी अंक के छठे दृश्य में राजकुमारी अलका से मानचित्र छीनने के लिए यवन ज्योंही हाथ बढ़ाता है, त्योंही सिंहरण प्रवेश करता है और राजकुमारी की जान में जान आती है। इसके बाद वाले सातवें दृश्य में अमात्य राक्षस चाणक्य को अन्धकूप में भेजने की बात सोचता ही है कि प्रहरियों को मार कर चन्द्रगुप्त प्रवेश करता है। कार्नेलिया, कल्याणी, सुवासिनी, पर्वतेश्वर आदि अन्य पात्र-पात्रियों के सामने भी इसी तरह के अवसर

आते हैं जब उनका संबधी पात्र—प्रायः उनका प्रिय पात्र—एक सेकेंड का विलंब किए बिना ही आ उपस्थित होता है।

खटकने वाली बात ऐसे स्थलो पर यह है कि व्यावहारिक जगत में विपत्तियाँ तो पग-पग पर मिलती हैं, पर उनसे प्राण की रक्षा करने वाला शायद ही कभी दिखाई देता हो; नहीं तो अपवादस्वरूप अवसर को छोड़ कर मनुष्य को स्वयं ही सदैव संकट झेलने पड़ते हैं। आकस्मिक और अनुमानित दोनों प्रकार की विपत्तियो से संकट में पड़े व्यक्ति की सहायता के लिए ठीक अवसर पर दूसरे व्यक्ति का—और ऐसे व्यक्ति का जिससे उसका घनिष्ठ सबध है, प्रवेश करना निसंदेह दर्शक के चित्त को चमत्कृत नहीं करता। बार-बार इसी तरह संकटापन्न पात्रों की रक्षा होते देख दर्शक का कौतूहल भी नही बढता; क्योंकि ज्योंही किसी पात्र पर विपत्ति आती है, वह उसका ध्यान छोड़ कर नेपथ्य की ओर देखने लगता है कि इसे बचाने कौन आ रहा है और उसने इतनी देर कहाँ और क्यों लगाई है।

खटकने वाली दूसरी बात नाट्यकथा के समय से सबध रखती है। यवनकुमारी कार्नेलिया सिकदर के आक्रमण के समय पिता के साथ भारत आई है। द्वितीय अक के आरंभ में हमारा उससे प्रथम परिचय होता है। इस समय उसकी अवस्था लगभग बीस वर्ष की है। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात सिल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया। इतिहास में यह घटना यवनागमन से बीस-बाइस वर्ष बाद की है। युद्ध मे भारतसम्राट चद्रगुप्त ने सिल्यूकस को बुरी तरह हराया। इसी समय यवनसाम्राज्य पर ऑंटिगोनस की चढाई और परिणामस्वरूप भारी विल्पव की आशका सिल्यूकस को विचलित कर देती है। चाणक्य इस-अवसर से पूरा लाभ उठाता है और संधि का मुख्य प्रस्ताव यह सामने रखता है कि राजकुमारी कार्नेलिया का सम्राट चन्द्रगुप्त से परिणय करके स्थायी संधि कर ली जाय। सिल्यूकस इस

प्रस्ताव को 'असंभव और घोर अपमानजनक' समझता है ; परंतु चन्द्रगुप्त से राजकुमारी के पूर्व परिचय की बात जान कर दूसरे ही क्षण इसे स्वीकार भी लेता है। इस प्रकार लगभग चालीस वर्ष की अवस्था की कार्नेलिया का विवाह सम्राट चन्द्रगुप्त से होता है।

प्रश्न यह है कि यवनसम्राट सिल्यूकस ने अपनी युवती पुत्री को इन बीस वर्षों तक अविवाहित क्यों रखा ! क्या कार्नेलिया भी चालीस वर्ष की अवस्था तक अविवाहित इसलिए रही कि उसका चन्द्रगुप्त से विवाह हो जाय ? प्रसादजी ने कार्नेलिया के हृदय मे प्रेम की पूर्व स्मृति के सबंध में यद्यपि सकेत किया है कि उसने चन्द्रगुप्त के विरुद्ध पिता के आक्रमण की सूचना पाकर अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं, तथापि युवावस्था के स्वर्णकाल में उसके अविवाहित रहने का वह स्पष्ट और यथार्थ कारण नही कही जा सकती।

अभिनय के मच पर सैकडों कोसों के व्यवधान का कोई मूल्य नहीं होता, यह कहकर अवस्था के इस अन्तर पर भी ध्यान न देने का तर्क, सभव है, इस आक्षेप के उत्तर में उपस्थित किया जाय, और इस दृष्टि से किसी सीमा तक यह ठीक भी होगा कि पचीस-तीस वर्ष का समय अन्य पात्रों के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं डालता—बालक, युवक, प्रौढ और वृद्ध, सभी इतना समय बिताने के पश्चात अपनी पूर्वावस्था के ही अन्त तक बने रहते है , परन्तु इतने लम्बे समय में समाप्त होने वाली कथा अपनाना भी, निश्चय ही, दोष है और इसलिए इस तर्क से कार्नेलिया की अवस्था-सबधी खटकने वाली बात के दोष का परिहार नहीं होता । कला की दृष्टि से भी चन्द्रगुप्त के प्रति कार्नेलिया के मन में प्रेममयी स्मृति बसा देना विशेष आकर्षक और चमत्कारपूर्ण नहीं बन सका है। हाँ, इससे यवनसम्राट सिल्यूकस के गौरव की थोडी-बहुत रक्षा हुई मानी जा सकती है , क्योंकि एक क्षण पहले जिस प्रस्ताव को मेगस्थनीज के मुँह से सुन कर घृणा से वह

कहता है—'अधम ग्रीक, तुम इतने पतित हो !'—उसी को, कार्नेलिया के हृदयाकर्षण की बात सुन कर, वात्सल्य की प्रेरणा से, दूसरे ही क्षण स्वीकार भी लेता है और सहर्ष कहता है—'तू सुखी हो बेटी ! तुझे भारत की सीमा से दूर न जाना होगा । तू भारत की सम्राज्ञी होगी ।'

सारगर्भित वाक्य—'चंद्रगुप्त' नाटक मे अनुभव-सारपूर्ण अनेक सुन्दर सूक्तियाँ हैं । इनमे से कुछ यहाँ संकलित हैं—

१. आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है ।
२. जिस देश के युवक वीर हो उसका पतन असंभव है ।
३. प्रमाद में मनुष्य कठोर सत्य का भी अनुभव नहीं करता ।
४. जन्मभूमि की सेवा के लिए जब सुकुमारियाँ कटिबद्ध हैं तब युवक कब पीछे रहेंगे ?
५. बूढा हो चला, पर मन बूढा न हुआ । बहुत दिनों तक तृष्णा को तृप्त करता रहा, पर तृप्ति नहीं होती ।
६. जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दंभ नही ।
७. निर्लज्ज विद्रोही की हत्या करना पाप नही, पुण्य है ।
८. स्वच्छ हृदय भीरु-कायरों की-सी वंचक शिष्टता नहीं जानता ।
९. स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है, परतु बिछलने का भी भय है ।
१०. कोमल शय्या पर लेटे रहने की प्रत्याशा में स्वतत्रता का भी विसर्जन करना पडता है ।
११. शत्रु की उचित प्रशंसा करना मनुष्य का धर्म है ।
१२. नियति सम्राटों से भी प्रबल है ।
१३. महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है ।
१४. विजयों की सीमा है, परंतु अभिलाषाओं की नहीं ।
१५. मन मधुप से भी चचल और पवन से भी प्रगतिशील है ।